श्रीधादर्श

२७

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

नवम्बर १९९५

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
कि. गांधीनगर, पिन-382009.

शोधादर्श

२७

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
नवम्बर १९९५

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
मन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ–२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

★ विषय-क्रम ★

१. गुरुगुण-कीर्तन : आदिपुराणकार जिनसेन —श्री रमा कान्त जैन २१६
२. शुभ राग की हेयोपादेयता —डा० ज्योति प्रसाद जैन २२२
३. सम्पादकीय – जयति ज्योति पर्व —श्री अजित प्रसाद जैन २२६
४. विश्वलोचनकोशगत कतिपय
नूतन शब्द —डा० (श्रीमती) कुसुम पटोरिया २३३
५. जैन धर्म एवं दर्शन के प्रतिष्ठापक–
नाटककार हस्तिमल्ल —डा० कैलाश नाथ द्विवेदी २३७
६. जैन साहित्य में 'लोकानुयोग साहित्य'—डा० प्रयाग नारायण मिश्र २४०
७. विदिशा - वैभव —श्री गुलाब चन्द्र जैन २४४
८. यशोभद्रसूरिगच्छ —डा० शिव प्रसाद २४७
९. भारत में जैन धर्मावलम्बी —श्री रमा कान्त जैन २५०
१०. मूक पशु की आवाज —श्री कैलाश भूषण जिन्दल २५४
११. चिन्तन कण : —श्री अजित प्रसाद जैन
काशी कोसल के नौ मल्ल नौ लिच्छवि राजा २५६
भगवान महावीर का अन्तिम धर्मोपदेश तथा उनका धर्म परिवार २५८
१२. आचाराङ्ग का सूक्त २५९
१३. The Occult —डा० शशि कान्त २६०
१४. समणसुत्तं (हिन्दी पद्यानुवाद) —श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' २६२
१५. साहित्य सत्कार :
अंधकार से प्रकाश ; श्रावक धर्म के मौलिक सिद्धांत ;
घर-घर चर्चा रहे धर्म की ; कुन्थ-कनक धर्म विज्ञान १ व २ ;
भोजन–कब ? कहाँ ? कैसे ? ; पंचकल्याणक–वैज्ञानिक विवेचन;
राजस्थान के जैन अतिशय क्षेत्र-परिचय एवं पूजा;
शब्द-शब्द विद्या का सागर; चेतना के गहराव में;
मुक्तक शतक; गोलालारे जैन जाति का इतिहास
—श्री अजित प्रसाद जैन २६५
वन्दना —श्री रमा कान्त जैन २६७
जैन अभिलेख परिशीलन —डा० शोभा लाल जैन २६८
इतिहास के अधखुले पृष्ठ —श्री जमना लाल जैन २६९
मंगलाष्टक Benediction; नित्यपूजा Jaina Worship;
अभिषेक पाठ Consecration; भक्तामर स्तोत्र;
जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन ; श्री हजारीमल बांठिया
अभिनन्दन पत्रिका ; जैन सिद्धांत भास्कर प्राच्य
दुर्लभ पाण्डुलिपि विशेषांक —डा० शशि कान्त २७०

१६.	समाचार विमर्श : —श्री अजित प्रसाद जैन	
	नवोदित भाग्योदय तीर्थ, अमरकन्टक	२७३
	पंचम, षष्ठम और अब तृतीय पट्टाचार्य भी	२७४
	परमागम मन्दिर निर्माण योजना	२७५
	श्री चैत्यालय जी की स्थापना	२७६
	विद्वत् परिषद के प्रस्ताव	२७६
१७.	अभिनन्दन	२७८
१८.	समाचार विविधा	२८०
१९.	आभार	२८४
२०.	शोक संवेदन	२८५
२१.	पाठकों की दृष्टि में	२८६

मूल्य — १० रु०

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्‌बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— सम्पादक मण्डल

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किया जाना चाहिए। यथासम्भव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

शोधादर्श में **समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधोदर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : उप सचिव, उ. प्र. शासन (अ. प्रा.)
मंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४

डा० कैलाश नाथ द्विवेदी : प्राचार्य, मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कोंच (जि० जालौन)-२८५२०५

श्री कैलाश भूषण जिन्दल : आई० आर० एस० (अ. प्रा.), एडवोकेट
अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ-२२६०१८

डा० (श्रीमती) कुसुम पटोरिया : प्रवक्ता, नागपुर विश्वविद्यालय
आजाद चौक, सदर, नागपुर (महाराष्ट्र)

श्री गुलाब चन्द्र जैन : राजकमल स्टोर्स, सावरकर पथ,
विदिशा-४६४००१

डा. ज्योति प्रसाद जैन (स्व.) : विश्व-विश्रुत विद्वान

श्री जमना लाल जैन : प्रबुद्ध चिन्तक
अभय कुटीर, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' : १२–सी. डी., आदर्श नगर, आलमबाग,
लखनऊ-२२६००५

डा० प्रयाग नारायण मिश्र : सह-सम्पादक, विमर्श:
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ-२२६००७

श्री रमा कान्त जैन : उप सचिव, उ. प्र. शासन (अ. प्रा.)
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

डा० शिव प्रसाद : व्याख्याता, पूज्य सोहनलाल स्मारक पार्श्वनाथ
शोधपीठ, आई. टी. आई. रोड,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

डा० शोभा लाल जैन : प्रवक्ता, श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता, जयपुर (राज.)

डा० शशि कान्त : विशेष सचिव, उ. प्र. शासन (अ. प्रा.)
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श-२७

वीर निर्वाण संवत् २५२२ नवम्बर १९९५ ई०

गुरुगुण-कीर्तन

आदिपुराणकार जिनसेन

याऽमिताभ्युदये पार्श्वे जिनेन्द्रगुणसंस्तुतिः ।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्ति सङ्कीर्तयत्यसौ ।।

—पुन्नाटसंघीय जिनसेन सूरिकृत हरिवंशपुराण, १/४०

भावार्थ—पार्श्वाभ्युदय काव्य में जो अपरिमित जिनेन्द्रगुणस्तुति की गई है वह स्वामी जिनसेन की कीर्ति का कीर्तन कर रही है अर्थात् उनकी कीर्ति को बढ़ा रही है ।

अभवदिव हिमाद्रेर्देवसिन्धुप्रवाहो
ध्वनिरिव सकलज्ञात्सर्वशास्त्रैकमूर्तिः ।
उदयगिरितटाद्वा भास्करो भासमानो
मुनिरनु जिनसेनो वीरसेनादमुष्मात् ।।८।।

यस्य प्रांशुनखांशुजालविसद्धारान्तराविर्भवत्
पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः ।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ।।९।।

प्रावीण्यं पदवाक्ययोः परिणतिः पक्षान्तराक्षेपणे
सद्भावावगतिः कृतान्तविषया श्रेयः कथाकौशलम् ।
ग्रन्थग्रन्थिभिदिः सदध्वकवितेत्यग्रो गुणानां गणो
ये संप्राप्य चिरं कलङ्कविकलः काले कलौ सुस्थितः ।।१०।।

ज्योत्स्नेव तारकाधीशे सहस्रांशाविव प्रभा
स्फटिके स्वच्छतेवासीत्सहजास्मिन्सरस्वती ।।११।।

—आचार्य गुणभद्र कृत उत्तरपुराण, प्रशस्ति/८-११

भावार्थ—जिस प्रकार हिमाद्रि (हिमालय) से देवसिन्धु (गंगा नदी) का प्रवाह प्रकट हुआ, जिस प्रकार सकलज्ञ (सर्वज्ञ देव) से समस्त शास्त्रों की एक मूर्ति स्वरूप, ध्वनि (दिव्य ध्वनि) प्रकट हुई और जिस प्रकार उदयाचल के तट से देदीप्यमान सूर्य प्रकट होता है उसी प्रकार उन वीरसेन स्वामी से मुनि जिनसेन प्रकट हुए ॥८॥ जिनके देदीप्यमान नखों से किरणें धारा की तरह फूटती थीं और उस किरण-धारा के बीच जिनके चरण कमल की तरह प्रकट होते थे उन जिनसेन मुनि के उन चरण-कमलों की रज (धूल) से जब राजा अमोघवर्ष के मुकुट के आगे जड़े रत्नों की कान्ति पीली पड़ जाती थी तब वह अपने आपको ऐसे स्मरण करता था कि 'आज मैं पवित्र (धन्य) हुआ'। उन पूज्य भगवान श्रीमान जिनसेन के चरण जगत् (ससार) के लिये मङ्गलकारी हों ॥९॥ पद और वाक्य की रचना में प्रवीणता, दूसरे पक्ष के निराकरण में तत्परता, कृतान्त विषयक (आगम विषयक) सद्भावों को भलीभांति समझना, कल्याण-कारी कथाएं कहने की कुशलता, ग्रन्थ की ग्रन्थि (गूढ़ अभिप्राय) को प्रकट करना और उत्तम मार्गयुक्त कविता का होना ये सब गुण भगवान जिनसेन को पाकर कलिकाल में भी चिरकाल तक कलंक रहित होकर स्थिर रहे थे ॥१०॥ जिस प्रकार चन्द्रमा में चाँदनी, सूर्य में प्रभा और स्फटिक में स्वच्छता स्वभाव से रहती है उसी प्रकार जिनसेन स्वामी में सरस्वती सहज वास करती थी। (११)

उपर्युक्त श्लोकों में जिन स्वामी जिनसेन का सादर स्मरण किया गया है, वे जैन मुनियों की **पंचस्तूपान्वय** शाखा के थे और **धवला, जयधवला** टीका ग्रन्थों के रचयिता भट्टारक वीरसेन स्वामी के सुयोग्य शिष्य थे। इनकी तीन कृतियां हैं—**पार्श्वाभ्युदय काव्य, जयधवला टीका और आदिपुराण**।

संस्कृत में भगवान पार्श्वनाथ और कमठ प्रसंग पर चार सर्गों और ३६४ मन्दाक्रान्ता वृत्तों में रचित **पार्श्वाभ्युदय** काव्य में महाकवि कालिदास के गीतिकाव्य **मेघदूत** को परिवेष्टित किया गया है। जिनसेन स्वामी की इस प्रारम्भिक कृति का सादर उल्लेख, जैसा कि प्रारम्भ में उद्धृत श्लोक से स्पष्ट है, **हरिवंश पुराण** (रचना काल ७८३ ई०) में हुआ है।

सिद्धान्त ग्रन्थ **कषायपाहुड** पर अपने गुरु वीरसेन स्वामी द्वारा प्राकृत-संस्कृत मिश्रित भाषा में मणि-प्रवाल शैली में व्याख्या स्वरुप प्रारम्भ की गई **जयधवला** टीका में चालीस हजार प्रमाण और अभिवृद्धि कर जिनसेन स्वामी ने

उसे श्रीमद्गुर्जरराय द्वारा शासित वाटग्रामपुर में राजा अमोघवर्ष के राज्यकाल में शक संवत् ७५९ (सन् ८३७ ई०) में पूर्ण किया था।

आदिपुराण उनकी अन्तिम कृति है। इसके ४७ पर्वों में से ४३वें पर्व के तीसरे पद्य तक १२००० श्लोक उनकी रचना मानी जाती हैं। इस **आदिपुराण** को पूर्ण करनें और **उत्तर पुराण** की रचना कर सम्पूर्ण कृति को **महापुराण** का रुप देने का श्रेय उनके शिष्य आचार्य गुणभद्र को है।

प्रशस्तियों, श्रुतावतार आदि के अनुसार जिनसेन के गुरु भट्टारक वीरसेन स्वामी ने अपने ग्रन्थों की रचना वाटग्रामपुर के चन्द्रप्रभ जिनालय में रहकर की थी और स्वामी जिनसेन, जो बाल्यावस्था से ही उनके पास रहे थे, ने भी **जयधवला** टीका वाटग्रामपुर में पूर्ण की थी। अतः जिनसेन स्वामी की सभी कृतियों का रचना स्थल वाटग्रामपुर रहा मानना समीचीन है। इस वाटग्रामपुर की पहचान डा० ज्योति प्रसाद जैन ने वर्तमान महाराष्ट्र राज्य स्थित नासिक जिले के डिण्डोरी तालुका में बसे वानीग्राम से की है जो तत्समय राष्ट्रकूट साम्राज्यान्तर्गत था।

इन जिनसेन स्वामी की आयु लगभग ६० वर्ष रही और इनका समय लगभग ७६० ई० से ८५० ई० रहा होगा, ऐसा अनुमान है। इन्द्रनन्दि के **श्रुतावतार** में वीरसेन के शिष्य 'जयसेन गुरु' द्वारा **जयधवला** टीका पूर्ण किये जाने के उल्लेख से भासित होता है कि कदाचित् इनका अपरनाम 'जयसेन' था।

सरस्वती के वरदपुत्र, अप्रतिम प्रतिभा के धनी इन जिनसेन स्वामी ने अपनी उपर्युक्त कृतियों द्वारा जैन वाङ्मय ही नहीं, भारतीय वाङ्मय को समृद्ध किया और अपने इस साहित्यिक अवदान से वह अमर हैं।

—रमा कान्त जैन

शुभ राग की हेयोपादेयता

—डा० ज्योति प्रसाद जैन

गत १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, कस्बा चिलकाना (सुलतानपुर-चिलकाना) जिला सहारनपुर (उ०प्र०) के निवासी अग्रवाल जातीय दिगम्बर जैन पं० ऋषभदास जी एक प्रबुद्ध विद्वान, सुकवि एवं सुलेखक हो गये हैं। पुराने लोगों से उनकी बहुत प्रशंसा सुनी है। दैवयोग से ३४–३५ वर्ष की अल्पायु में ही उनका निधन हो गया था। हिन्दी और संस्कृत के साथ ही साथ वह उर्दू और फ़ारसी के भी अच्छे विद्वान थे, धर्मज्ञ तो वह थे ही। उर्दू में उन्होंने **मिथ्यात्वनाशक नाटक** नाम की एक बहुत ही सुन्दर एवं मनोरंजक पुस्तक लिखी थी। हिन्दी गद्य एवं पद्य में भी कई रचनाएं उनकी बतायी जाती हैं। विक्रम संवत् १६४३ (सन् १८८६ ई०) में उन्होंने अपने पितामह ला० सुखदेव जी, पिता कवि मंगलसेन जी तथा एक अन्य बुजुर्ग पं० सन्तलाल जी की प्रेरणा से सरस हिन्दी पद्य में **-पंचबालयति–पूजापाठ** की रचना की थी। उक्त पाठ की संभवतया उत्थानिका के रुप में उन्होंने ३१ पद्यों में जैनी-पूजा विषयक एक रोचक शंका-समाधान प्रस्तुत किया है, जो मूलरुप से स्व० पं० जुगल किशोर मुख्तार ने स्व- सम्पादित **अनेकान्त** (वर्ष १३, किरण ६, दिसम्बर १६५४, पृष्ठ १६५-१६६) में प्रकाशित किया था।

प्रथम ३ सोरठों में विद्वान लेखक ने यह शंका उठाई है कि जिनागम में राग और द्वेष दोनों को ही कर्मबन्ध का मूलकारण अतएव त्याज्य कहा है, किन्तु साथ ही जिनपूजा को, जो प्रकट ही 'राग-समाज' अर्थात् बहुलता के साथ रागपूर्ण है, उपादेय एवं कार्य-साधक, सिद्धि-प्रदाता प्रतिपादित किया है। यह विसंगति एवं परस्पर विरोध क्यों ? इसका क्या समाधान है ?

आगे के २८ पद्यों में, जिनमें से ८ दोहे हैं और शेष अडिल्ल छन्द में हैं, एक रूपक द्वारा सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया है—

एक वन में एक घने वृक्ष के नीचे बिल में एक चूहा रहता था, जो बड़ा दीर्घदर्शी, विज्ञ, विचक्षण और गुणग्राही था। दैवयोग से एक दिन अपने बिल से निकलकर भोजन की खोज में वह वन में यत्र-तत्र फिरने लगा, कि अकस्मात् सामने की ओर से एक बिलाव को आता देख, चकितचित्त हो लौटने के लिये मुड़ा, तो देखा कि पीछे से उसकी ताक में एक नेवला चला

आ रहा है। ऊपर की ओर निगाह की तो देखा कि उसी की घात में एक कौआ लगा है। बड़ी संकटापन्न स्थिति थी—देखा कि अब मरण निश्चित है। सोचने लगा कि किस प्रकार जीवन की रक्षा हो—आगे बढ़ता हूं तो बिलाव खा जायेगा, पीछे लौटता हूं तो नेवला भक्षण कर जायेगा, यहीं ठहरता हूं तो काग नहीं छोड़ेगा – कहीं भी कोई शरण-स्थान दिखायी नहीं पड़ता ? इस असमंजस में सोचता हुआ चारों ओर दृष्टि दौड़ा रहा था कि देखा एक शिकारी ने बिलाव को अपने जाल में फसा लिया है। अब चूहे ने धैर्य धारण किया और चतुराई से बिलाव के निकट पहुंचा। बिलाव प्रसन्न हुआ और पूछा, 'कहो कैसे आना हुआ?' चूहा बोला, 'हे मार्जार सुन! यद्यपि तुझे जाल में बंधा देखकर मैं प्रसन्न होता और तेरे पास फटकता भी नहीं, किन्तु यदि तू मेरी शर्त स्वीकार करे तो मैं अभी तेरे सारे बन्धन काट दूँ। मेरे शत्रु काग और नेवला मेरी घात में लगे हैं, उनसे तुम्हीं मुझे बचा सकते हो।' मार्जार ने कहा, 'चतुर मित्र! उपाय तो बताओ। मुझे तुम्हारी शर्त स्वीकार है, मेरी बात का विश्वास करो।' मूषक बोला, 'मित्र! जब मैं तेरे पास आऊं तो तू बड़े हितकारी वचनों के साथ मेरा सम्मान करियो। तेरे ऐसे व्यवहार से वे काग और नेवला मेरी आशा त्याग कर भाग जायेंगे, और मैं प्रफुल्लित मन से तेरे समस्त बन्धन काट दूंगा–तू विश्वास कर। हम दोनों की प्राण रक्षा का यही उपाय है।'

बिलाव ने यह सोचकर कि इस चूहे के बिना जीवन रक्षा नहीं है, उसकी बात स्वीकार कर ली, बड़े प्रेम से उसे अपने पास बुलाकर उसका आदर-सम्मान किया। काग और नेवला भाग गये। चूहा उस ओर से सुरक्षित हुआ, और अब बिलाव का जाल काटने लगा, किन्तु फिर उसके मन में आत्मरक्षा के लिये शंका जगी कि यह बिलाव तो मेरा जाति-विरोधी घोर शत्रु है, स्वयं बन्धन मुक्त होते ही क्या यह मुझे छोड़ देगा ? मार्जार बोला, 'मित्र, क्यों शिथिल हो गये ? क्या अपना वचन भूल गये और मन में द्रोह करने की ठान ली है?' मूषक ने उत्तर दिया, 'आग से कमल भले ही उत्पन्न हो जाय, तो भी मैं कभी भी द्रोह नहीं ठानूंगा। तुझसे ही मुझे शंका है, इसी से काम में ढीला पड़ गया हूं। मैं सच कहता हूं, तू धीरज रख, मैं तेरे समस्त बन्धन काट दूंगा।' बिलाव ने कहा, 'मैंने तो सौगन्ध खाकर तुझसे मित्रता की है, फिर भी तेरे मन से शंका नहीं गई। तेरा मन शंकित रहेगा तो तू मेरे बन्धन कैसे काटेगा ? अतः मेरा कहा मान और अविश्वास तज।'

इस पर चतुर मूषक ने कहा, 'मैंने तो तेरे से प्रयोजनवश कार्यार्थि प्रेम किया है। निश्चय ही तू मेरा जाति-विरोधी और निर्दय है। सो मेरा कर्त्तव्य तो आत्म रक्षा है—उस प्रयोजन की सिद्धि होने तक ही मेरी-तेरी यह कार्यार्थि प्रीति परिमित है। वैसे, अपने वचन का निर्वाह भी मुझे करना ही है। अतः इस द्विविध विषमता से पार पाने के लिये मैंने यह निश्चय किया है कि एक कठिन बन्धन को छोड़कर तेरे अन्य सब बंधन तो अभी काट देता हूं, और तुझे पकड़ने के लिये बधिक आयेगा तो तू मुझे भूलकर अपने संकट से व्याकुल हो जायेगा। उस समय मैं वह बन्धन भी काट दूंगा। छूटते ही तू भाग जायेगा और दुःख का भी अन्त हो जायेगा।' अतएव मूषक ने ऐसा ही किया और मार्जार ने भी प्रसन्न हो अपनी स्वीकृति दे दी। इतने में बधिक आया। उसे आता देख अपनी-अपनी कार्य सिद्धि की आशा से सभी प्रसन्न हुए। जैसे ही शिकारी पकड़ने के लिये निकट आया, बिलाव आसन्न विपत्ति से व्याकुल हो गया। चूहे ने वह बन्ध भी काट दिया और अपना दाव देख तुरन्त भाग गया।

लेखक कहता है कि 'हे भव्य! विचार कर देखो, उक्त प्रश्न का समस्त भ्रान्ति का निरसन करने वाला यह दृष्टान्त ही उत्तर है। इसका भावार्थ हैं कि यद्यपि सब ही शत्रु त्याज्य हैं, तथापि उनमें से किसी एक का (जिससे कार्य सध सके) पक्ष ग्रहण करके अन्य सब को तज दे, और जब कार्य सध जाय तो आत्मरक्षा को मुख्यता देकर, प्रत्युपकार करके उस एक का भी त्याग कर दे, जैसा कि चूहे ने बिलाव के साथ किया। इस सम्बन्ध में बुद्धिमानों के सुनने योग्य जो विशेष है, जिससे विवाद-बुद्धि छोड़, भ्रम मिटता है और चित्त में खोज-बुद्धि उत्पन्न होती है, वह कहता हूं—

मूषक को जीव समझो, जगत को उसका बिल, नकुल को द्वेष और काग को मोह-ममता। मार्जार राग है जो धर्मरुपी जाल में बंधा है—पूजा, दानादि उस जाल के बंधन हैं। यह जीव सुख भोग की खोज में मनुष्यगति रूपी वन में भटकता है। दो शत्रुओं से डरकर, बन्धन में पड़े तीसरे शत्रु का उसने सहारा लिया। पूजादि राग के प्रभाव से द्वेष और मोह का क्षय हो गया और उनके साथ ही दुःख, दोष आदि शेष शत्रु भी पलायन कर गये। पुनः जीव सोचता है कि यदि इस शुभराग का भी पूरा विश्वास करुं तो यह भी पिण्ड नहीं छोड़ेगा और भववास को अधिक बढ़ायेगा। मुझे प्रत्युपकार भी करना है, किन्तु तभी जब वह मुझे भवभ्रमर में न डाल सके।

इस प्रकार चिन्तवन करता हुआ यह जीव निशदिन अवसर की ताक में रहता है, और स्वपुरुषार्थ द्वारा पूर्ण ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य को प्राप्त कर लेता है तो (अर्हन्त रुप में) आर्य देश में विहार करता हुआ संसार के प्राणियों को हित उपदेश देता है, तथा जिन पूजा का अतिशय जग में प्रगट करता है—वह नहीं कहता, लोग स्वयं जान जाते हैं कि यह अर्हत् पद सातिशय जिन पूजा का ही प्रभाव है—(उक्त प्रशस्त राग के प्रति यही जीव का प्रत्युपकार है)।

जो व्युत्पन्न मति हैं वे इस प्रकार मोक्ष पद प्राप्त कर लेते हैं, और जो षठमति हैं वे राग-द्वेष-मोह के जबड़ों में फसे रहते हैं। जो लोग जिनपूजादि शुभ राग की शरण नहीं लेते वे इस संसार में उक्त राग-द्वेष-मोह आदि शत्रुओं द्वारा कृत नाना प्रकार के क्या-क्या दुःख नहीं सहते ? अतएव, नित्य ही चाव से जिनपूजा करनी चाहिये। मनुष्य गति और श्रावक कुल मिला है तो यह अवसर नहीं चूकना चाहिये।

लघु-धी-सम उत्तर कहा, संसय रहै जु शेष।
ऋषभदास जिनशास्त्रबहु, देखहु भव्य विशेष॥"

अस्तु, वर्तमान में निश्चय और व्यवहार या उपादान और निमित्त को लेकर, अथवा जिन-दर्शन-पूजन-दान-व्रत आदि शुभरागात्मक क्रियाओं की हेयोपादेयता को लेकर जो भीषण द्वन्द्व चल रहा है, और फलस्वरूप कषायोपशमन के बजाय कषायोद्रेक तीव्र से तीव्रतर हो रहा हैं, उसका कितना सुन्दर सटीक एवं रोचक समाधान एक शास्त्रमर्मज्ञ ने अब से लगभग एक शती पूर्व किया था, यह उक्त रचना से स्पष्ट है। और यह उसकी इस दृढ़ आस्था का परिणाम है कि–'जिनमत परम अनूप, अनेकान्त सत्यार्थ है।'

——

सम्पादकीय

जयति ज्योति पर्व

अब से २५२२ वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के अन्तिम प्रहर में तथा अमावस्या के उषा काल में अर्हंत परमेश्वर, परम वीतरागी, प्राणि हितोपदेशी, ज्ञान पुञ्ज, सर्वज्ञ, अन्तिम तीर्थंकर महावीर प्रभु ने इस भौतिक देह का त्याग कर परम निर्वाण पद–सिद्ध पद प्राप्त किया। वे जन्म मरण आवागमन के संसार चक्र से मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध, निराकार, अजर, अमर, निरंजन परमात्मा हो गए। भगवज्जिनसेनाचार्य ने अपने संस्कृत महाकाव्य **हरिवंशपुराण** (रचना-७८३ ई०) में इस अलौकिक घटना का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

"भगवान महावीर निरन्तर सब ओर के भव्य समूह को संबोध कर पावानगरी पहुंचे और वहां के 'मनोहरोद्यान' नामक वन में विराजमान हो गए। जब चतुर्थ काल के तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रह गए, तब स्वाति नक्षत्र में कार्तिक अमावस्या के सुप्रभात में संध्या समय (रात्रि एवं दिन के संधि काल में) स्वभाव से ही योग निरोध कर घातिया कर्म रुप ईंधन के समान अघातिया कर्मों (आयु, वेदनीय, नाम, गोत्र) को भी नष्ट कर बंधन रहित हो, संसार के प्राणियों को सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुख से सहित, निर्बन्ध-मोक्ष स्थान को प्राप्त हुए। गर्भादि पाँचों कल्याणकों के महान अधिपति, सिद्ध शासन भगवान महावीर के निर्वाण के समय चारों निकाय के देवों ने विधिपूर्वक उनके शरीर की पूजा की। उस समय सुर और असुरों के द्वारा जलाई हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा। श्रेणिक आदि राजाओं ने भी प्रजा के साथ मिल कर भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजा की। तदनन्तर बड़ी उत्सुकता के साथ जिनेन्द्र भगवान के रत्न-त्रय की याचना करते हुए इन्द्र देवों के साथ-साथ यथास्थान चले गए। **उस समय से लेकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की भक्ति संयुक्त संसार के प्राणी इस भरत क्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे।** भावार्थ––**उन्हीं की स्मृति में दीपावली मनाने लगे।**" (हरिवंश पुराण–षटषष्टितः सर्ग–श्लोक १५-२१)। (यहां पर राजा कुणीक–अजातशत्रु के स्थान पर उसके पिता श्रेणिक का उल्लेख किसी भ्रमवश हो गया प्रतीत होता है क्योंकि श्रेणिक को दिवंगत हुए उस समय १७-१८ वर्ष हो गए थे। ––लेखक)

आदि पुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन (सेनान्वय) के शिष्य गुणधर सूरि ने अपने संस्कृत भाषा के महाग्रंथ **उत्तर पुराण** (रचना ८९८ ई०) में इस घटना का वर्णन (भविष्य काल की घटना की शैली में) निम्न प्रकार किया है—

(श्रेणिक राजा के प्रश्न के उत्तर में इन्द्रभूति गौतम गणधर ने कहा) "अन्त में वीर प्रभु पावानगर में पहुंचेंगे। वहां के मनोहर उद्यान के वन के भीतर अनेक सरोवरों के बीच में मणिमयी शिला पर विराजमान होंगे। विहार छोड़ कर निर्जरा को बढ़ाते हुए वे दो दिन तक वहां विराजमान रहेंगे और फिर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन, रात्रि के अन्तिम समय स्वाति नक्षत्र में अतिशय देदीप्यमान तीसरे शुक्ल ध्यान में तत्पर होंगे। तदनन्तर तीनों योगों का निरोध कर समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपाती नामक चतुर्थ शुक्ल ध्यान को धारण कर चारों अघातिया कर्मों का क्षय कर देंगे और शरीर रहित केवल गुण रुप होकर एक हजार मुनियों के साथ सबके द्वारा वांछनीय मोक्ष पद प्राप्त करेंगे। वही उनका अनन्त सुख को करने वाला सबसे बड़ा पुरुषार्थ होगा--उनके पुरुषार्थ की वही अन्तिम सीमा होगी। तदनन्तर इन्द्रादि सब देव आवेंगे और अग्नीन्द्र के मुकुट से प्रज्वलित होने वाली अग्नि की शिखा पर भगवान महावीर का शरीर रखेंगे। स्वर्ग से लाये गंध माला आदि उत्तमोत्तम पदार्थों के द्वारा मोह के शत्रुभूत उन तीर्थंकर भगवान की विधिपूर्वक पूजा करेंगे और फिर अनेक अर्थों से भरी हुई स्तुतियों के द्वारा संसार भ्रमण के पार होने वाले उन भगवान की स्तुति करेंगे। जिस दिन भगवान महावीर स्वामी को निर्वाण प्राप्त होगा उस दिन मैं भी घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान रुपी नेत्र को प्रकट करने वाला होऊंगा और भव्य जीवों को धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशों में विहार करुंगा। तदनन्तर विपुलाचल पर्वत पर जाकर निर्वाण प्राप्त करुंगा। मेरे निर्वाण जाने के दिन श्रुतपारगामी सुधर्मा भी केवलज्ञान प्राप्त करेंगे।" (उत्तर पुराण का षट्-सप्ततितम (६७वां) पर्व, श्लोक सं० ५०९-५१७)

अपभ्रंश भाषा के सिद्ध कवि विबुध श्रीधर ने अपने सुप्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य **वड्ढमाण चरिउ** (रचना–श्रुतपंचमी ११३३ ई०) में वीर प्रभु के निर्वाण का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

"३० वर्षों तक अपने उपदेशों से भव्य जनों के अज्ञान रुपी अन्धकार को दूर करते हुए वे वीर प्रभु अपने सात प्रकार के संघ सहित पावापुरी के श्रेष्ठ उद्यान में पहुंचे।

पावापुरी के उस उद्यान में कायोत्सर्ग विधान में ठहर कर (शेष अघातिया कर्मों का घात कर) कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि के चौथे पहर के अन्त में वे त्रिलोकाधिप परमेश्वर वीर जिनेश्वर निर्वाण स्थल को पहुंचे।

उस अवसर पर आनन्दित मन वाले देवगण अपने आसन के कांपने से वीर प्रभु का निर्वाण जान कर वहां आए। उन्होंने गुरु भक्ति पूर्वक पूजा की, मति शक्ति पूर्वक स्तुति की। पुनः उन्होंने उन जिनेन्द्र के पार्थिव शरीर को पुष्पों से सुसज्जित किया और अग्नि कुमार जाति के देवों ने अपने सिर के अग्र भाग में स्थित अग्नि से उनका दाह-संस्कार किया।

सभी देवगण अपने-अपने आवासों को यह कहते हुए लौट गए कि जिस प्रकार द्वितीया के चन्द्रमा के समान वर्धमान यशवाले तथा श्री मोक्ष लक्ष्मी गृहस्वरुप महावीर स्वामी को निर्वाण प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार हम लोगों को भी उसकी प्राप्ति हो, जिससे इस संसार में लौट कर न आना पड़े।" **(वड्ढमाण चरिउ,१०-४०)**

दिगम्बर जैन आम्नाय के सभी भाषाओं के परवर्ती साहित्य में भगवान महावीर के निर्वाण एवं दीपावली पर्व के प्रारम्भ विषयक वर्णनों के आधार उपरोक्त ही प्राचीनतम उल्लेख है। श्वेताम्बर जैन परम्परा में यद्यपि भगवान महावीर के जीवन की विविध घटनाओं के विषय में प्राचीनतम सूचनाएं विभिन्न आगम ग्रंथों में संरक्षित हैं तथापि पहली सम्पूर्ण जीवनी **कल्पसूत्र** में मिलती है। **कल्पसूत्र** की मूल रुप में रचना (लगभग ३५० ई० पू०) अन्तिम श्रुतकेवलि भद्रबाहु स्वामी द्वारा की गई मानी जाती है तथा उसके वर्तमान स्वरुप का संकलन भी वल्लभी वाचना के परिणाम स्वरुप देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा अन्य आगमों के साथ ही वीर निर्वाण के ९८० वर्ष बाद (४५३ ई० में) किया गया माना जाता है। श्वेताम्बर समाज में **कल्पसूत्र** को आगमों जैसी ही मान्यता प्राप्त है तथा पर्यूषण पर्व में इसका नियमपूर्वक वाचन किया जाता है। इस ग्रंथ में भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष कल्याणक का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है—

"भगवान का अन्तिम चातुर्मास पावानगरी में हस्तिपाल राजा की रज्जुक शाला (कर्मचारियों की पुरानी शाला) में हुआ। उस चातुर्मास में..... कार्तिक मास की अमावस्या के दिन जो अन्तिम रात्रि थी, उस रात्रि को श्रमण

भगवान महावीर ने कालधर्म को प्राप्त किया। कायस्थिति और भवस्थिति पूर्ण कर निर्वाण को प्राप्त हुए और संसार से पार उतर गये, भली प्रकार संसार में फिर कर, फिर यहां न आना पड़े, ऐसे ऊर्ध्व प्रदेश में गए। जन्म, जरा और मृत्यु के कारण रुप कर्मों को छेदन करने वाले, सर्वार्थ को सिद्ध करने वाले, तत्वार्थों को जानने वाले, तथा भवोपग्राही कर्मों से मुक्त होने वाले, सर्व दुखों का अन्त करने वाले, सर्व संतापों के अभाव से परिनिवृत्त होकर प्रभु ने शारीरिक और मानसिक सर्व दुखों का नाश कर दिया।.....सर्वार्थ सिद्धि नामक मुहुर्त में स्वाति नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग हो जाने पर प्रभु कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् सर्व दुखों से मुक्त हो गये।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु ने कालधर्म प्राप्त किया यावत् सर्व दुखों से मुक्त हुए, वह रात्रि स्वर्ग से आते-जाते देव-देवियों से प्रकाश वाली हो गई। कोलाहलमयी जिस रात्रि को श्रमण भगवान श्री महावीर शारीरिक बन्धनों से मुक्त हुए, यावत् सर्व दुखों से मुक्त हुए, उस रात्रि में गौतम गोत्रीय बड़े इन्द्रभूति अनगार शिष्य को ज्ञातृकुल में जन्मे हुए श्री महावीर प्रभु से प्रेम बन्धन टूट जाने पर अनन्त, अनुपम, उत्तम केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ।.....

जिस रात्रि में श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये, यावत् सर्व दुखों से मुक्त हुए, उस रात्रि को नव मल्लकी ज़ाति के काशी देश के राजा तथा नव लिच्छवी जाति के कोशल देश के राजाओं का किसी कारण वहां सम्मिलन था। वें अट्ठारह ही चेडा (चेटक) राजा के सामन्त कहलाते थे। उन्होंने इस अमावस्या के दिन संसार रुप समुद्र से पार करने वाला उपवास पौषध किया हुआ था। अब संसार से भाव-उद्योत चला गया, अतः अब द्रव्य उद्योत करेंगे, यह विचार कर उन्होंने दीपक जलाये। **उस दिन से दीवाली का-दीपमालिका का महोत्सव प्रचलित हुआ।** कार्तिक सुदी प्रतिपदा के दिन देवताओं ने श्री गौतम स्वामी के केवलज्ञान का महोत्सव किया। इससे उस दिन भी मनुष्यों में हर्ष पैदा हुआ। जब राजा नन्दिवर्धन (भगवान महावीर के ज्येष्ठ भ्राता) ने प्रभु का निर्वाण सुना तो वे शोक सागर में मग्न हो गये। इससे उन्हें सुदर्शना नामक उनकी बहिन ने समझा-बुझा कर आदर सहित द्वितीया के दिन अपने घर पर भोजन कराया। उस दिन से भाई दूज का त्योहार प्रचलित हुआ।" (**कल्पसूत्र**—मूल अर्द्ध-मागधी भाषा, हिन्दी अनुवाद श्री आत्मानन्द जैन महासभा, लुधियाना, से प्रकाशित—पृष्ठ २०६-२१७)

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि जैन धर्मावलम्बी अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष कल्याणक (मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति) के रुप में तथा गणधरों में प्रमुख इन्द्रभूति गौतम गणेश को केवलज्ञान की प्राप्ति के उपलक्ष में दीपावली का पर्व दीपमालिका प्रज्वलित कर बड़े हर्ष-उल्लास, श्रद्धा एवं भक्ति के साथ विगत २५२२ वर्षों से मनाते आ रहे हैं, जिसके एतिहासिक उल्लेख भी ३५० ई०पू० से मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। अपने अन्तिम शरीर का परित्याग कर भगवान महावीर संसार के आवागमन चक्र से मुक्ति पा गए, वे कृतकृत्य हो गए। अत: उनका यह अन्तिम मरण ही उत्सव का कारण बना। इस दिन भगवान महावीर की विशेष पूजा की जाती है तथा इस भावना के साथ उनके चरणों में दीपक अर्पित किए जाते हैं कि ज्ञान दीप से दीप जलकर ज्ञान की ज्योति का अजस्र प्रवाह होता रहे।

अनेक मुसलमान विद्वानों ने (अब्दुल रहमान मुलतानी ने अपभ्रंश भाषा के अपने ग्रन्थ **'सन्देश बाहा'** – रचना-१३०० ई० में, अबुल फ़ज़ल ने फारसी के ग्रन्थ **आइन-ए-अकबरी** — रचना – १५९४ ई० में), तथा महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, श्री परिपूर्णानन्द वर्मा आदि अनेक प्रख्यात मनीषी, विद्वानों, साहित्यकारों एवं चिन्तकों ने दीपावली पर्व का प्रारम्भ भगवान महावीर के निर्वाण से जुड़ा स्वीकार किया है। कालान्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ तथा गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के भी इस दिन से जुड़ जाने से दीपावली पर्व का महत्व और भी बढ़ता गया।

एक बहुप्रचलित जनश्रुति के अनुसार भगवान श्री रामचन्द्र जी ने लंकाधिपति महाबली रावण पर विजयादशमी (दशहरा – आश्विन शु० दशमी) को विजय प्राप्त की थी तथा वापस लौटकर दीपावली के दिन अयोध्या में प्रवेश किया था और राज सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे, जिसकी खुशी में अयोध्या-वासियों ने दीपमालिकाओं से अपने घरों को सजाया था तथा तभी से दीपावली का त्यौहार प्रति वर्ष मनाया जाने लगा। किन्तु इस जनश्रुति का क्या आधार है, या कोई आधार है भी कि नहीं, यह खोज का विषय है। इस जनश्रुति की पुष्टि रामकथा के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ ऋषि वाल्मीकि कृत **रामायण** में दी गई तिथियों से नहीं होती। उक्त **रामायण** के अनुसार श्री रामचन्द्र ने चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को रावण वध कर लंका पर विजय प्राप्त की थी। रावण की

अन्त्येष्टि करा कर तथा विभीषण को लंका के राज सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके पुष्पक विमान द्वारा एक सप्ताह के भीतर वैशाख कृष्णा पंचमी को ही वे प्रयाग में भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंच गये थे और अगले दिन ही अयोध्या में उनका भव्य स्वागत व राजतिलक हुआ था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी **रामचरित मानस** में रावण-वध चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को ही माना है तथा राम का राज्याभिषेक भी दीपावली से छह महीने से भी अधिक पहले हुआ ही माना है। रामकथा के अन्य स्रोतों (जैन व बौद्ध) में भी रावण-वध व राम-राज्याभिषेक की किन्हीं अन्य तिथियों का उल्लेख नहीं मिलता। वैसे भी दीपावली पर सर्वत्र लक्ष्मी और गणेश की ही पूजा की जाती है, श्री राम की नहीं।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण महोत्सव के कारण दीपावली जैन धर्मावलम्बियों के लिए अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति का पर्व है। वस्तुतः यह जैनियों का श्राद्ध पर्व है क्योंकि इसमें न केवल भगवान महावीर का बल्कि इस अवसर्पिणी काल में जन्मे आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर अन्तिम केबली जम्बू स्वामी पर्यन्त जितनी भी महान आत्माएं परम पुरुषार्थ के द्वारा निर्वाण प्राप्त कर लोकाकाश के अग्रभाग में स्थित सिद्ध-शिला पर जा विराजी हैं उन सभी की तथा उनकी निर्वाण-भूमियों की बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति के साथ स्तवन वन्दना की जाती है तथा दीप अर्पित किया जाता है। जैन परम्परा में केवल चरम-शरीरी महापुरुषों की ही पुण्यतिथि मनाना सार्थक माना गया है क्योंकि अन्यों का तो अभी न मालूम कितनी बार जन्म-मरण होना है।

इस अवसर पर पढ़े जाने वाले प्राकृत भाषा में निबद्ध **निर्वाण काण्ड** स्तोत्र में गौतम स्वामी की निर्वाण-भूमि विपुलाचल पर्वत तथा जम्बू स्वामी की निर्वाण-भूमि चौरासी मथुरा का उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यही हो सकता है कि इस स्तोत्र की रचना स्वयं गौतम स्वामी ने भगवान महावीर के निर्वाण के तुरन्त बाद ही की होगी तथा उन्होंने ही निर्वाण महोत्सव के अवसर पर सभी निर्वाण भूमियों की भाव वन्दना करने की परिपाटी चलाई होगी। प्राचीन उल्लेखों में भगवान के निर्वाण महोत्सव में भगवान की पूजा केवल दीपक से करने के वर्णन मिलते हैं। कालान्तर में निर्वाण लाडू भी चढ़ाया जाने लगा जिसका समाधान यह कह कर किया जाता है कि लाडू गोल होने के कारण शून्य-मोक्ष का प्रतीक है। निर्वाण लाडू चढ़ाने की प्रथा भट्टारकीय युग

की ही देन प्रतीत होती है। यह कब से किसके द्वारा प्रारम्भ की गई, शोधार्थी विद्वानों को इसकी खोज करनी चाहिए।

परम-धार्मिक शान्ति-प्रदाता ज्योति-पर्व दीपावली पर जैनेतर समाज की देखादेखी कुछ लोग जुआ खेलना बुरा नहीं समझते, कुछ श्री मन्दिर जी के प्राङ्गण में ही पटाखे छोड़कर अपने आनन्द का प्रदर्शन करते हैं। जुआ खेलना सात व्यसनों में एक प्रमुख व्यसन है जो सदा ही विशेष पाप-बंध का कारण है। बारूद के दुर्गन्धमय पटाखे न केवल वायुमण्डल को दूषित करते हैं, वरन् घोर हिंसा जन्य भी हैं। श्रावकों को इन दोनों कुरीतियों से बचना चाहिए।

निर्वाण-रात्रि होने के कारण दीपावली की रात्रि महाकाल-रात्रि भी कहलाती है। मंत्र-सिद्धि के लिए साधकों में इसका विशेष महत्व है। दीपावली को (मोक्ष) लक्ष्मी तथा (गौतम) गणेश की पूजा की जाती है। संस्कृत भाषा में निबद्ध एक प्राचीन अज्ञात जैन कवि की गणेश-स्तुति के निम्नलिखित श्लोक से हम इस लेख का समापन करते हैं—

जिनान जितारांति गणान गरिष्ठान देशावधीन सर्वपरावधीश्च।
सत्कोष्ठ बीजादि पदानुसारीन् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै॥

अर्थ—अरातीय गणों के जेता, गम्भीर, देशावधि एवं सर्वावधि, परमावधि ज्ञान के धारक, सम्यक् कोष्ठ बुद्धि एवं बीज बुद्धि पदों के अनुसरणकर्ता जिन स्वरूप गणेश की उनके गुणों की प्राप्ति हेतु मैं अत्यन्त भक्ति के साथ स्तुति करता हूं।

जयति मोक्ष लक्ष्मी, जयति गणेश, जयति ज्योति पर्व!

—अजित प्रसाद जैन

विश्वलोचनकोशगत कतिपय नूतन शब्द

—डॉ (श्रीमती) कुसुम पटोरिया

संस्कृत भाषा अपनी अपार शब्द-सम्पदा के लिए विख्यात है। प्राचीन-काल से संस्कृत कोशकारों ने साहित्य और समाज में प्रयोग के रुप में यत्र-तत्र विकीर्ण शब्दराशि को संकलित व व्यवस्थित करने के दायित्व का निर्वाह किया है। भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में नये शब्द आते रहते हैं, दूसरी ओर अप्रयोग के कारण अनेक शब्द मृत हो जाते हैं। नये कोशकारों का दायित्व होता है नवीन प्रचलन व प्रयोग में आये शब्दों का संग्रह करना। इसीलिए नये-नये कोशों की आवश्यकता पड़ती है। ख्याति-प्राप्त **अमरकोश** के रहते आचार्य हेमचन्द्र ने **अभिधानचिन्तामणि** की रचना की। **अमरकोश** की तुलना में इसमें तीन-चार गुने शब्द अधिक हैं। प्राकृत, अपभ्रंष व अन्य देशी भाषाओं के उन शब्दों को इसमें ग्रहण किया गया है जो कवि सम्प्रदाय द्वारा संस्कृत में प्रयुक्त हैं— उदाहरणार्थ 'मोदको लड्डुकश्च' व 'हेरिको गूढ़पुरुषः' इत्यादि।

आचार्य श्रीधरसेन (ल. १४ वीं शती ई.) के **विश्वलोचनकोश** की भी महत्वपूर्ण विशेषता यही है। इन्होंने भी अपने समय तक की भाषाओं के संस्कृत में आगत शब्दों का संग्रह किया है। अतः यह सबसे अधिक शब्दों व अर्थों को बतलाने वाला कोश है। आचार्य हेमचन्द्र (ल. १२ वीं शती ई.) के पश्चात् दो सौ वर्ष की अवधि में संस्कृत में आगत शब्दों का समावेश कर अपने कोश को पूर्ण बनाकर कोशकार के गुरुतर दायित्व का उत्तम निर्वाह इन्होंने किया है। प्राकृत भाषाओं से शब्द ग्रहण कर संस्कृत पुष्ट व समृद्ध होती रही है। इन शब्दों का संस्कृत में अवश्य प्रयोग होता होगा, क्योंकि आचार्य हेमचन्द्र भी उन्हीं देशी शब्दों का **अभिधानचिन्तामणि** में संग्रह करते हैं जिनका संस्कृत कविप्रयोग करते हैं। संस्कृत में अप्रयुक्त अन्य देशी शब्दों के लिए **देशीनाममाला** की रचना उन्होंने की थी। इसके अतिरिक्त संस्कृत शब्दकोशों की परम्परा में महेश्वर कृत **विश्वप्रकाश** तथा एक अन्य शब्दकोश **मेदिनी** का नाम मिलता है। **विश्वप्रकाश** से भोगीन्द्र नामक एक अन्य कोशकार की जानकारी भी मिलती है।

आचार्य श्रीधरसेन ने अपने कोश को 'अमर' द्वारा निर्मित पटुसूत्र में पिरोई गई व हृदय पर धारण करने योग्य मुक्तावली कहा है, जिसका 'नायेन्द्र' (अन्य कोशकार) द्वारा संग्रथित **कोश–समुद्र** में प्राप्त नाना कवीन्द्रों के मुख रुपी शुक्तियों से उद्भव हुआ बताया है।

नागेन्द्रसंग्रथितकोशसमुद्रमध्ये
नानाकवीन्द्रमुखशुक्तिसमुद्भवेयम्
विद्वद्ग्रहादमरनिर्मितपट्टसूत्रे
मुक्तावली रचिता हृदि सन्निधातुम् ।

विश्वलोचनकोश के उन कतिपय शब्दों का उल्लेख यहां किया जा रहा है जो आधुनिक भाषाओं में उसी रुप में अथवा किञ्चित् परिवर्तन के साथ प्राप्त होते हैं:-

भूक— छिद्र और अवकाश के अर्थ में यह शब्द है। हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं में छिद्र के अर्थ में 'भोंक' शब्द है। इसका मूल संस्कृत नहीं प्रतीत होता है। **विश्वप्रकाश** व **मेदिनी** में भी यह शब्द है।

रोक— **विश्वलोचन** में रोक शब्द 'दत्त्वा क्रये रन्ध्रे नावि' अर्थात् देकर खरीदना (नगद), रन्ध्र व नौका के अर्थ में है। **अमरकोश** में रोक का अर्थ बिल या छिद्र है – छिद्रं निर्ऋथनं रोकं रन्ध्रं श्वभ्रं वपा शुषिः। **अभिधान-चिन्तामणि** में भी यही अर्थ है। 'दत्त्वा क्रये' अर्थात् नगद के अर्थ में यह **विश्वलोचन** में ही है। **विश्वप्रकाश** में अवश्य क्रयणभेद के अर्थ में यह शब्द है। हिन्दी में यह रोकड़ या रोकड़ा के रूप में है। मराठी में भी यह रोख या रोकड़ है।

कणिक— गोधूम (गन्दुम) चूर्ण के अर्थ में कणिक शब्द है। यह शब्द **विश्वप्रकाश** तक में नहीं है। संभवतः केवल **विश्वलोचन** में है। मराठी में गेहूं के आटे को कणिक ही कहते हैं। बुन्देली में भी गेहूं के आटे का नाम कनक है।

गञ्जा— **अमरकोश** व **अभिधानचिन्तामणि** में यह शब्द मदिरालय के अर्थ में है। **विश्वलोचन** में इसके खान, सुराग्रह, भाण्डागार, गञ्जन आदि अर्थ दिये गये हैं। हिन्दी के सबसे बृहत्कोश **नालंदा विशाल शब्दसागर** में गञ्जा के खजाना, ढेर, समूह, भण्डार, गल्ले की मण्डी, मद्यपात्र व मदिरालय अर्थ किये गये हैं। उसमें खजाना व गल्ले की मण्डी आदि के अर्थ में यह फारसी से आया बताया गया है। गल्ले की मण्डी के लिए गञ्ज शब्द आज भी हिन्दी आदि भाषाओं में प्रयुक्त होता है।

झाट— निकुञ्ज व कान्तार के अर्थ में यह शब्द **विश्वलोचन** में है। अन्य प्रमुख कोशों में यह शब्द नहीं है। हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में यह शब्द झाड़ी है। झाड़ी तो उसी निकुञ्ज या लतागृह के अर्थ में है। झाड़ शब्द भी झाट से अपना सम्बन्ध सूचित करता है। झाड़ में उसका अर्थ वृक्ष है।

ओल्ल— सूरण व आर्द्र के लिए यह शब्द है, जो अन्यत्र नहीं है, यद्यपि आर्द्र शब्द से ही ओल्ल या ओला शब्द आया है। मारवाड़ी में व अन्य बोलियों में गीले के लिए आर्द्र शब्द है। मराठी में अदरक के लिए 'आलें' व गीले के लिए 'ओला' शब्द हैं।

आलु— के अर्थ हैं गलन्तिका (झारी), भेलक व कन्द। आलु नामक कन्द का वाचक यह शब्द प्रतीत होता है।

खल्ला— के अर्थ हैं 'चर्मणी निम्नेऽपि वस्त्रभेदेऽपि चातके'। इनमें से चमड़े के अर्थ में खाल शब्द का प्रयोग हिन्दी आदि भाषाओं में है। अत: खल्ला शब्द का सम्बन्ध 'खाल' से है। 'निम्न' के अर्थ में इसका प्रयोग मराठी में है।

खट्टिक-- खटीक या कसाई व भैंस के दूध के झाग के अर्थ में यह शब्द नवीन ही है – 'खट्टिक: सौनिकेऽपि स्यान्माहिषक्षीरफेनके'। अन्य संस्कृत कोशों में इस शब्द का संग्रह नहीं है। दूध के झाग के अर्थ में भी यह शब्द संस्कृत के लिए नितान्त नवीन है।

खाटि— **विश्वलोचन** में शवरथ और किण के अर्थ में है। अन्यत्र यह शब्द नहीं है। अरथी के लिए खाटि शब्द अपना सम्बन्ध खाट से सूचित करता है। घाव के लिए खाटि का सम्बन्ध भी बोल भाषाओं से है। मराठी में घाव (अर्थात् रगड़ से उत्पन्न घाव) के लिए खट, घट्टा व घट्ठा शब्द हैं। हिन्दी में यह घट्ठा है।

चिल्ली— 'क्षुद्रवास्तके' के अर्थ में चिल्ली शब्द है, अर्थात् क्षुद्र व बथुआ के लिए चिल्ली शब्द है। तेलुगु में छोटे के लिए चिन्नी शब्द है। कन्नड़ में 'चिल्लो' का अर्थ मामुली व रेज़गी होता है। हिन्दी में चिल्लर शब्द रेज़गारी के अर्थों में प्रयुक्त होता है।

छल्ली— वल्कल के लिए छल्ली शब्द छाल के निकटस्थ है।

खोलक— शिरस्त्राण के अर्थ में खोलक है। खोलक का सम्बन्ध खोल से है, जो आवरण को कहते हैं।

गण्डक— गैंडे के अतिरिक्त विद्या और संख्या विशेष के अर्थ में गण्डक शब्द है। चार कौड़ियों के या चार के समूह को हिन्दी व मराठी में गण्डा कहा जाता है।

धनिक— पति के अर्थ में धनी और स्त्री के अर्थ में धनिका शब्द हैं। आज भी हिन्दी की अनेक बोलियों में पति के लिए धनी और पत्नी के लिए धनियां

शब्द हैं। **नालंदा शब्दसागर** में धनिया के धनियां (मसाला) व वधू, दोनों अर्थ दिये गये हैं।

सरक— **अमरकोश** व **अभिधानचिन्तामणि** में सरक शब्द अनुतर्षण अर्थात् चषक के अर्थ में है। सरक का अर्थ **विश्वलोचन** में 'अविच्छिन्न पांथपंक्ति' है– 'चलने वालों की अविच्छिन्न पंक्ति'। इस अर्थ का विस्तार होकर 'सरक' संभवत: 'सड़क' बना होगा।

चङ्ग— 'चङ्ग शोभने दक्षे' अर्थात् सुन्दर के अर्थ में चंग है, जो अन्य कोशों में नहीं है। हिन्दी में 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' में सुन्दर के अर्थ में, 'भला चंगा' में स्वस्थ के अर्थ में है। मराठी में 'चांगला' व 'चांग' के रूप में इसी अर्थ में है।

टङ्ग— 'जंघायां' अर्थ में टङ्ग शब्द है। हिन्दी में टांग/टंगड़ी शब्द हैं।

वाट— वर्त्मन् (रास्ते) के अर्थ में वाट (बाट) शब्द हिन्दी, मराठी आदि भारतीय भाषाओं में भी है।

बार्दल— दुर्दिन (बादलों से युक्त दिन) व स्याही के दवात के लिए है। बादल से साम्य है।

बण्ड— 'हस्तादिवर्जते' के लिए है। लूले के लिए बांडा शब्द हिन्दी में भी है।

पातिली— मृत्पात्रभेद के अर्थ में है, जो पतीली के अत्यधिक निकट है।

चर्पट— चर्पट के अर्थ हैं स्फारविपुल (चौड़ा), चपेट (चपत), पर्पट (पापड़)। चौड़ा व चपत शब्द जो आज प्रचलित हैं, चर्पट के निकट हैं।

दाढ़ा— दंष्ट्रा से दाढ़/दाढ़ा शब्द निष्पन्न हुआ है, और यही शब्द पुन: संस्कृत में सम्मिलित हुआ है।

इस प्रकार अनेक उन शब्दों का जो बोलचाल की भाषा के थे और संस्कृत में प्रयुक्त होने लगे थे, संग्रह **विश्वलोचनकोश** में है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से ध्वनि परिवर्तन वाले शब्दरुपों का भी संग्रह है। तरुण के साथ तलुन, छुप के साथ क्षुप आदि अनेक शब्द संकलित हैं। वातरुष (उत्कोच), महाघोष (हाट, बाजार), पात्रटीर, पात्रट, वार्बटीर, मदी आदि अनेक शब्द हैं, जो सर्वथा नूतन हैं। शब्दों का इतिहास और उनकी यात्रा जानने के लिए इन शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी व रोचक है। +

जैन धर्म एवं दर्शन के प्रतिष्ठापक – नाटककार हस्तिमल्ल

— डॉ० कैलाश नाथ द्विवेदी

संस्कृत साहित्य सहस्रों वर्ष की सतत साधना संजोये सहस्राधिक सरस रूपकादि विविध विधाओं की विशिष्ट कृतियों से अत्यन्त समृद्ध परिलक्षित होता है। संस्कृत सुकवियों की गौरवमय सुदीर्घ प्राचीन परम्परा में भास, कालिदास, शूद्रक, हर्ष, भवभूति, भट्टनारायण, मुरारि, विशाखदत्त के साथ ही मध्यकालीन अनेक अप्रतिम यशस्वी नाटककारों ने अपनी अद्वितीय रूपकात्मक कृतियों से संस्कृत नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि की है। मध्यकालीन नाटककारों में दिगम्बर जैन परम्परा के नाटककार हस्तिमल्ल का निःसन्देह मूर्धन्य स्थान है।

भास, कालिदास, भवभूति आदि प्राचीन नाटककारों पर अनुसन्धान के व्यापक क्षेत्र में पर्याप्त अनुसन्धान कार्य हुआ है, जबकि मध्यकालीन कतिपय लब्धप्रतिष्ठ नाटककार एवं उनकी अप्रतिम नाट्य रचनाएं आज भी अन्धकार में पड़ी हैं जिनमें जैन नाटककार कविवर हस्तिमल्ल उल्लेखनीय हैं। तेरहवीं शती ईस्वी में प्राचीन कर्णाटक (पाण्ड्य राज्य) के गुडिपत्तन स्थान में श्री गोविन्द भट्ट के पुत्र के रूप में प्रादुर्भूत, 'सूक्त-रत्नाकर', 'कविता साम्राज्य लक्ष्मीपति', 'महाकवि तल्लज', 'सरस्वती स्वयंवरवल्लभ', 'उभय भाषा चक्रवर्ती' आदि उपाधियों से विभूषित, नाटककार हस्तिमल्ल के बहुमुखी व्यक्तित्व एवं गौरवपूर्ण कृतित्व पर अभी और गहन अनुसन्धान कार्य होना आवश्यक प्रतीत होता है।

महान् जैन धर्म एवं दर्शन के मनीषी मर्मज्ञ आचार्य कविवर हस्तिमल्ल ने मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक प्रतिच्छाया को अपनी रम्य रूपकात्मक रचनाओं (**विक्रान्त कौरवम्, अञ्जना पवनञ्जय, सुभद्रा नाटिका, मैथिली कल्याण**) में जीवन्त रूप में प्रतिष्ठापित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है, जिससे तत्कालीन जनजीवन जैन धर्म व दर्शन से सर्वथा अनुप्राणित परिलक्षित होता है।

जैन धर्म एवं दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों के श्रेष्ठ प्रतिष्ठापक होते हुए भी हस्तिमल्ल की ब्राह्मण विचारधारा के प्रति भी कम आस्था नहीं थी, जैसा कि श्री वासुदेव पटवर्धन ने **अञ्जना पवनञ्जय** की भूमिका में लिखा है—

"The Brahmanical ideas occur in the four plays of Hastimall. They show clearly how Hastimall though a Jain by faith, could not escape the influence of Brahmanical ideas."

हस्तिमल्ल की सम्पूर्ण नाट्य कृतियों में जैन धर्म एवं दर्शन की प्रभविष्णु प्रतिष्ठा अभिव्यञ्जित है। इनके तीन रूपकों में नान्दी-पाठ जैन धर्म के महान् तीर्थंकरों की प्रार्थना से प्रारम्भ होते हैं। **विक्रान्त कौरवम्** तथा **सुभद्रा नाटिका** के नान्दी-पाठ में प्रथम पूज्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभ देव की स्तुति की गई है।

असिमषिमुखा वृत्तिर्येन क्षितौ प्रकटीकृता,
भरतमहिपस्सम्राड् यस्यात्मजो भुवनोत्तरः।
सुरपमुकटी कोटी नीराजितांघ्रि सरोरुहः,
प्रथमजिनपः श्रेयो भूयो ददातु मुदा सदा॥ **(विक्रान्तकौरवम् १/१)**

आर्हन्तीमतुलामवाप्य तपसामेकं फलं भूयसा,
यो नैराश्यघनस्त्वयस्य लगताम्यर्हणायोः पदम्।
स्वीचक्रे स्तवनातिवर्तिविभवां सिद्धिश्रियं शाश्वतीमा-
धस्तीर्थकृतां कृती स **वृषभः** श्रेयांसि पुष्णातु नः॥**(सुभद्रानाटिका १/१)**

अञ्जना पवनञ्जय नामक रूपक में मुनिसुव्रतनाथ, जो बीसवें तीर्थंकर थे, की स्तुति है—

यस्मादाविर्भूदचिन्त्य महिमा वागीश्वराद् भारती।
सः श्रीमान् मुनिसुव्रतो दिशतु वः श्रेयः पुराणः कविः॥

मैथिली कल्याण में आठवें बलभद्र, रामभद्र, की स्तुति में नान्दी-पाठ है। रामभद्र के लिए 'चरम देहधारी पुरुषोत्तमः' तथा 'मानुषरूप-मात्रधारी देवः' अभिधान प्रयोग किये गये हैं।

हस्तिमल्ल ने **विक्रान्त कौरवम्** नाटक की प्रशस्ति में स्वयं यह व्यक्त किया है कि जिनकी चरण चौकी के समीप पाण्ड्य नरेश की मुकुट की कान्ति का समूह अत्यधिक आभासित होकर सुशोभित रहता है, वे जिनेन्द्र देव हमारी रक्षा करें—

गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्नवरसभरितैराहतो यं **जिनेशः**,
पायान्नः पादपीठस्थलविकटलसत्पाण्ड्यमौलि प्रभौधः।

भगवान् जिनेन्द्र की पांचों उपचारों (अभिषेक, स्थापन, पूजन, शान्ति तथा विसर्जन) के द्वारा सर्वजगत् के कल्याण के लिए भव्य जीवों द्वारा प्रिय पूजन का विशद वर्णन **विक्रान्त कौरवम्** के षष्ठ अंक में प्राप्त होता है। इसी अंक में कवि ने मंगल चतुष्ट्य अर्हन्त, सिद्धि, साधु और केवलि प्रणीतधर्म से मंगल कामना की है—

तदधिगम सकामा योगिनश्चारु तेषाम्,
चरितमति चतुष्कं मंगलं नः कृधीष्ट !

अञ्जना पवनञ्जय नामक रूपक में भी कवि ने अपने इष्टदेव की वन्दना करते हुए 'श्री चन्द्र प्रभाय नमः', 'श्री मत्प्रमेन्दु मुनये नमः' आदि नम्र मनोभाव व्यक्त किये हैं। **सुभद्रा नाटिका** के भरतवाक्य में भी कवि की जैन धर्म एवं दर्शन के प्रति अटूट आस्था स्पष्टतः प्रकट होती है तथा इसी के अन्त में **'नमः सिद्धेभ्यः', 'श्री शान्तिनाथाय नमः'** लिखकर हस्तिमल्ल अपनी आन्तरिक भक्ति भावना और पूजा-प्रतिष्ठा सिद्ध तीर्थंकरों के प्रति प्रकट करते हैं।

नाटककार की सम्पूर्ण नाट्य कृतियों में जैन धर्म एवं दर्शन को श्रेष्ठ प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जिससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि हस्तिमल्ल अपने समय के एक अप्रतिम नाटककार के साथ ही जैन धर्म एवं दर्शन के यशस्वी प्रतिष्ठापक थे। पाण्ड्य नरेश ने तो कवि के **सम्यकत्व** की परीक्षा लेने के लिए उनके ऊपर एक पागल हाथी (हस्तिन्) ही छुड़वा दिया था—

सम्यकत्वं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे, चास्मिन् पाण्ड्य
महेश्वरेण कपटाद्धन्तुं स्वमभ्यागते। सुभद्रानाटिका (पृ. ४६)

कहा जाता है कि अपनी अद्भुत आध्यात्मिक क्षमता के प्रभाव से उस पागल हस्ति को इन्होंने परास्त कर दिया था, तभी से ये "हस्तिमल्ल" अभिधान से विश्वविश्रुत हो गये।

अतः सिद्ध होता है कि नाटककार हस्तिमल्ल जैन धर्म एवं दर्शन के यशस्वी आचार्य, मनीषी साधक तथा श्रेष्ठ प्रतिष्ठापक थे। विद्यानाथ, नरसिंह, विश्वनाथ कविराज, वामन भट्, ब्रह्मसूरि, विरूपाक्ष आदि परवर्ती नाटककार भी उनसे प्रभूत रूप से प्रभावित परिलक्षित होते हैं। विस्तृत अध्ययन हेतु द्रष्टव्य लेखक का सद्यः प्रकाशित शोधग्रन्थ **"नाटककार हस्तिमल्ल"** (**परिमल, पब्लिकेशन्स**, 27/28, **शक्ति नगर, दिल्ली**–7) ★

जैन साहित्य में 'लोकानुयोग साहित्य'

— डॉ० प्रयाग नारायण मिश्र

जैन-साहित्यार्णव के अपरिमित-अनुपम ग्रन्थरत्नों के उद्गम का मूल भगवान महावीर की वह दिव्य-वाणी है जो बारह वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् ईसा-पूर्व ५५७ में श्रावणकृष्णा प्रतिपदा के दिन ब्राह्ममुहूर्त में विपुलाचल पर्वत पर प्रथम बार निसृत होकर तीस वर्ष तक निसृत होती रही थी। कहते हैं कि उनकी उस अद्वितीय वाणी को आत्मसात् करके उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर ने बारह अंगों में निबद्ध किया था। श्रवणाधारित होनें के कारण द्वादशांग में प्रतिपादित यह अर्थ-श्रुत कहलायी। भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात वही द्वादशांग रूप श्रुत गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में वचसा प्रवाहित होती हुई भद्रबाहु के समय तक अविच्छिन्न बनी रही। भयंकर दुर्भिक्षजन्य संघभेद के कारण नष्ट प्रायः इस महार्घ रत्न को संजोने के उपक्रम में केवल ग्यारह अंगों का ही संकलन किया जा सका।[1]

द्वादशाङ्ग रुप श्रुत का अति महत्त्वपूर्ण बारहवाँ अंग जो असंकलित रह गया उसका नाम था 'दृष्टिवाद'। उस दृष्टि के पाँच भेदों में से प्रथम भेद का नाम परिकर्म था, उस परिकर्म के भी चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसमुद्र प्रज्ञप्ति और व्याख्या प्रज्ञप्ति, संज्ञक पाँच भेद थे। वस्तुतः ये समस्त ग्रन्थ खगोल और भूगोल विषयक जैन-मान्यताओं से सम्बद्ध थे।

जैन साहित्य में भूगोल-खगोल विषयक साहित्य को लोकानुयोग साहित्य के अभिधान से लोक विश्रुति प्राप्त है। सम्पूर्ण जैन-साहित्य को विषय की दृष्टि से जिन चार वर्गों में विभक्त किया गया है उनमें करणानुयोग का अपना विशिष्ट स्थान है। करणानुयोग के अन्तर्गत खगोल और भूगोल का वर्णन करने वाले तथा जीव और कर्म सिद्धान्त विषयक ग्रन्थों को गर्भित किया गया है। अस्तु करणानुयोग के साहित्य के अन्तर्गत संग्रहीत लोकानुयोग साहित्य एक ऐसा लोक-साहित्य है जिसमें आधुनिक ज्योतिष, निमित्त, ग्रह-गणित और भौगोलिक तथ्यों का समावेश होता है।

वैसे तो समग्र जैन साहित्य एक प्रकार से महार्घ ग्रन्थ रत्नों का अक्षय भण्डार है। यतः भगवान महावीर ने किसी विषय को अव्याकृत कहकर अलक्षित

या उपेक्षित नहीं किया था अत: उसी परिपाटी के अविच्छिन्न अनुपालन के फल-स्वरूप जैन साहित्याकाश विविध-विध असंख्य ग्रन्थ-नक्षत्रों से समलङ्कृत है उसमें भी लोकानुयोग साहित्य का अपना विशिष्ट, विलक्षण एवं अद्वितीय स्थान है क्योंकि लोकानुयोग-विषयक साहित्य जैसा जैन परम्परा में उपलब्ध है वैसा अन्यत्र नहीं है। अन्य पारम्परिक मान्यताओं से सामञ्जस्य स्थापित करते हुए भी इसके बहुत से अंश पूर्ण तथा नवीन एवं मौलिक हैं। जैन साहित्य के प्राय: प्राकृत भाषा-मूलक होने की प्रथा लोकानुयोग साहित्य के मूल में भी निहित है। द्वादशांग रूप श्रुतगत मूल लोकानुयोग साहित्य तो अनधिगत ही है, परन्तु इतर साहित्य स्वयं में परिपूर्ण एवं अध्येय है। वैसे इस लोकानुयोग साहित्य का परिसीमन सर्वथा असम्भव ही है फिर भी प्राप्त उल्लेखों[2] के आधार पर इस पर एक दृष्टि अति संक्षेपत: समर्पित है—

लोक विभाग– लोकानुयोग साहित्य का सर्वनन्दिमुनि कृत यह प्राचीनतम ग्रन्थ मूलत: प्राकृत भाषा में था, परन्तु सम्प्रति अनुपलब्ध है। ग्रन्थ की अनुपलब्धि एवं किसी साक्ष्य के अभाव में इसके यथार्थ विवेच्य-स्वरूप एवं परिमाण के विषय में कुछ भी लिखना दुष्कर है एक संस्कृत **लोक विभाग** का भी उल्लेख प्राप्त होता है। संस्कृत **लोक विभाग** उसी मूल **लोक विभाग** का संस्कृत रूपान्तर होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। सर्वनन्दि मुनि के द्वारा रचित प्राकृत **लोक विभाग** की भाषा का परिवर्तन करके सिंह सूरि द्वारा प्रणीत संस्कृत **लोक विभाग** में ग्यारह प्रकरण हैं और यह अनुष्टुप बद्ध है। सम्भवत: प्राकृत **लोक विभाग** में भी ग्यारह विभाग रहे होंगे और वह भी गाथाबद्ध होगा।। **लोक विभाग** का रचना काल छठी शताब्दी ईस्वी का प्रारम्भिक काल प्रतीत होता है।

तिलोय पण्णत्ति– त्रिलोक प्रज्ञप्ति हिन्दी अनुवाद के साथ दो भागों में जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, से प्रकाशित एक प्राचीन एवं अत्युपादेय ग्रन्थ है। इसके कर्ता ने इसके इस नाम के सार्थक्य को सिद्ध करते हुए लिखा है कि यह तीनों लोकों के प्रकाशन में दीप-तुल्य है।[3] दिगम्बर जैन परम्परा में उपलब्ध लोक विषयक साहित्य में इसी ग्रन्थ को प्राचीनतम मानकर इसे परवर्ती लोकानुयोगी ग्रन्थों का आधार माना गया है। इसके अनुशीलन से स्पष्ट विदित होता है कि यह आचार्य परम्परा से प्राप्त वाणी के आधार पर ही सर्जित है। अस्तु सूक्ष्मावलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका मूलाधार द्वादशांग रूप श्रुत का दृष्टिवाद नामक अंग ही है। आठवीं शताब्दी के मध्य में प्रणीत यह ग्रन्थ

पाँच गाथाओं के द्वारा पंच गुरुओं की वन्दना से प्रारम्भ होता है जो **षट्खण्डागम** के मंगलभूत पंच-नमस्कार मन्त्र का स्मरण करा देता है । इसमें नव अधिकार हैं ।

जम्बूद्वीप पण्णत्ति– जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण से भी पूर्व संकलित किये गये उपांग रूप ग्रन्थों में पारम्परिक गद्यात्मक सूत्रों में विरचित एक उपांग **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति** भी है जो शान्तिचन्द्र रचित संस्कृत वृत्ति के साथ श्रेष्ठि देवचन्द लालचन्द भाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई, की ओर से सं० १९७६ में प्रकाशित हो चुका है । श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार इसका संकलन भी वलभी वाचना के समय किया गया था । पंच नमस्कार मन्त्र से ही आरम्भ होने वाले इस ग्रन्थ की भाषा अर्द्धमागधी है और यह ग्यारह अधिकारों में विभक्त है ।

बृहत्संग्रहणि– लोकानुयोग के जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचित इस ग्रन्थ का प्रकाशन मलय गिरि की संस्कृत टीका के साथ जैन धर्म प्रसारक सभा, भाव नगर, से हो चुका हैं । मूल ग्रन्थ में ग्रन्थकार का कोई निर्देश नहीं है । उपर्युक्त नाम टीकाकार के अभिमत पर आधारित है । ग्रन्थ के प्रारम्भ में ग्रन्थकार ने ग्रन्थ का नाम **संगहणि** बतलाकर देवों और नारकियों की स्थिति, भवन, अवगाहना तथा मनुष्यों और तिर्यञ्चों के शरीर और आयु का प्रमाण आदि के निर्देश करके इसे पूर्वाचार्यकृत श्रुत पर आधारित बताया है ।

बृहत् क्षेत्र समास- मलय गिरि की संस्कृत टीका के साथ जैन धर्म प्रसारक सभा, भाव नगर, से ही प्रकाशित इस ग्रन्थ में जम्बुद्वीप, लवणाब्धि, धातकी खण्ड द्वीप, कालोदधि तथा पुष्करवरद्वीपार्ध संज्ञक पाँच अधिकार हैं जिनमें क्रमशः ३९८, ९०, ८१, ११ एवं ७६ गाथाएं हैं । इस प्रकार ६५६ गाथात्मक इस ग्रन्थ का नाम टीकाकार ने **क्षेत्र समास** बतलाया है जबकि ग्रन्थकार ने इसे **समय क्षेत्र समास**[4] नाम से ही मण्डित किया है । ग्रन्थ की व्युत्पत्ति करते हुए टीकाकार ने लिखा है– 'समय क्षेत्र समासं समयः सूर्यगमन क्रियोपलक्षितः परमनिरुद्धः कालविशेषः तदुपलक्षितं क्षेत्रं समयक्षेत्रं मनुष्य क्षेत्रमिति' ।[5] अस्तु ग्रन्थकार ने इसका सार्थक नाम **समय क्षेत्र समास** रखा है परन्तु यह **बृहत्क्षेत्र समास** के नाम से ही प्रसिद्ध है । ग्रन्थकार का नाम अस्पष्ट है ।

सूयं प्रज्ञप्ति– मलय गिरि की संस्कृत टीका के साथ आगमोदय समिति से प्रकाशित यह भी **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति** की तरह एक उपांग है । इसका प्रारम्भ भी **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति** की तरह उन्हीं शब्दों में और उसी रूप में हुआ है परन्तु

यह अधिकार बद्ध न होकर बीस प्राभृतों में विभक्त है। सूर्य एवं चन्द्र की सम्पूर्ण जानकारी से युक्त इस ग्रन्थ में वर्णित विषयों की सूचना प्रारम्भ में ही पांच गाथाओं के द्वारा दे दी गयी है।

चन्द्र प्रज्ञप्ति– यह **सूर्य प्रज्ञप्ति** की ही प्रतिकृति मात्र है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सूर्य और चन्द्र दोनों का ही कथन होने के कारण उसी ग्रन्थ को दो नामों से प्रसिद्ध कर दिया गया है। **चन्द्र प्रज्ञप्ति** के प्रारम्भ में अधिकार परक गाथाओं से युक्त कुछ गाथाएं हैं। उसके बाद **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति** वाली उत्थानिका है। **सूर्य प्रज्ञप्ति** में अधिकार सूचक गाथाएं इसी उत्थानिका के बाद में हैं। मात्र इतना ही अन्तर है, शेष समान है।

ज्योतिष्करण्ड– श्री ऋषभदेव जी केशरीमल्ल जी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, से प्रकाशित पंचाशक आदि मूल ग्रन्थों के संग्रह में प्रकाशित **ज्योतिष्करण्ड** के मुखपृष्ठ को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह वलभी वाचनानुयायी किसी प्राचीन आचार्य की कृति है। इसमें कालप्रमाण से लेकर पौरुषी पर्यन्त इक्कीस अधिकार हैं। ग्रन्थ के अन्त को देखकर स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ का मूल आधार **सूर्य प्रज्ञप्ति** है। इसमें कुल ३७६ गाथाएं हैं।

त्रिलोकसार– संस्कृत टीका के साथ माणिक चन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई, तथा टोडर-मल-रचित ढुंढारी भाषा में लिखी टीका के साथ हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई, से प्रकाशित आचार्य नेमिचन्द्र कृत **त्रिलोकसार** सहकार पद्धति पर रचित ग्यारहवीं शती ईस्वी के मध्य का ग्रन्थ है। इसमें कुल १०१८ गाथाएं हैं तथा लोक सामान्य, भावनलोक, व्यन्तर लोक, ज्योतिर्लोक, वैमानिक लोक और नरतिर्यक लोक संज्ञक छह अधिकार हैं।

जम्बूदीव पण्णत्ति संगह– तेरह उद्देशो में निबद्ध लोकानुयोग का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके नाम एवं विषय से सर्वथा स्पष्ट है कि यह पूर्णतया किसी प्राचीन स्रोत से संकलित है। पद्मनन्दि नामके कोई आचार्य इसके कर्ता हैं तथा यह ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य काल के बाद की रचना है, ऐसे संकेत भी प्राप्त होते हैं।

प्रवचनसारोद्धार– सिद्धसेनसूरि कृत वृत्ति के साथ सेठ देवचन्द लालचन्द जैन पुस्तकोद्धार फण्ड से दो भागों में प्रकाशित इस संग्राहक ग्रन्थ का श्वेताम्बरीय

(शेष पृष्ठ २४४ पर)

विदिशा–वैभव

—श्री गुलाब चन्द्र जैन

वर्तमान विदिशा–प्राचीन भद्दिलपुर–वेत्रवती व वेस नदियों के मध्य स्थित है। पुरातात्विक उत्खनन में यहां अनेक महत्वपूर्ण शिला-लेख, मूर्तियां एवं प्राचीन मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। यहां स्थित अनेक टीलों तथा चहारदीवारों के भग्नावशेषों से इस नगर की प्राचीनता व विशालता का अनुभव किया जा सकता है। ये अवशेष ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी तक के हैं। अनेक शताब्दियों तक वैभव एवं समृद्धि की दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति करने के पश्चात किसी दैवी प्रकोप के कारण यह स्थल वीरान हो गया तथा लोग वेतवा नदी के पूर्व की ओर बस गए जिसे आजकल विदिशा कहा जाता है।

भारत के हृदय स्थल में स्थित विदिशा दिल्ली-बम्बई रेल मार्ग पर बीना व भोपाल के मध्य भोपाल से ३५ कि० मी० दूर स्थित है। यह मध्य प्रदेश का एक जिला है। जैन समाज यहां काफी संख्या में निवास करती है। यहां दस जैन मन्दिर हैं जिनमें श्री शीतलनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर (किले के अन्दर) लगभग चार सौ वर्ष प्राचीन है।

(पृष्ठ २४३ का शेष)

साहित्य में एक अति प्रतिष्ठित स्थान है। द्वारबद्ध इस ग्रन्थ में २७६ द्वार और १५६६ प्राकृत गाथाएं हैं। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर लोकसाहित्यानुयोग के नेमिचन्द्र-कृत इस महार्घरत्न का प्रणयन काल द्वादश शताब्दी का पूर्वार्द्ध प्रतीत होता है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि पूर्ववर्ती समस्त लोकानुयोग के प्रतिबिम्ब रुप में संग्रहीत यह ग्रन्थ अत्यन्त व्यापक एवं उपादेय है।

सन्दर्भ-सूत्र–

१– पण्डित कैलाश चन्द्र शास्त्री : **जैन साहित्य का इतिहास**, भाग-१, पृ० २ पर्यन्त
२– प्रस्तुत लेख के प्रमाण मूलत: जैन साहित्य के इतिहास पर ही आधारित हैं।
३ - **तिलोय पण्णत्ति**– प्रथम अधिकार, षष्ठ गाथा
४– समयक्खेत्त समासं वोच्छामि गुरुवएसेण
५– **वृहत् क्षेत्र समास**, पृ० १

★

हरिवंश पुराण में पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का पूर्वभव में भद्दिलपुर में जन्म लेने का उल्लेख है।

दसवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ के गर्भ, जन्म व तप–तीन कल्याणक की पवित्र भूमि भद्दिलपुर की पहचान बहुत से प्राच्यविद् विद्वानों ने विदिशा और उसके आस-पास के प्रदेश से की है। कुछ शब्दकोशों में भी विदिशा को भद्रपुर या भद्दिलपुर का पर्यायवाची माना गया है।

भगवान नेमिनाथ व भगवान महावीर के समवशरण यहां आयोजित हुए बताये जाते हैं।

प्राचीन काल में विदिशा श्रमणों का एक प्रमुख केन्द्र था। यहां कुंजरावर्त व रथावर्त दो पर्वत थे। ये दोनों पास-पास थे। आर्य वज्रस्वामी रथावर्त पर्वत पर आये थे व बाद में तपश्चर्या हेतु कुंजरावर्त पर्वत की ओर विहार कर गये थे।

यह कहा जाता है कि स्वामी समन्तभद्राचार्य ने विदिशा में हुए वाद-विवाद में अजैनों को परास्त कर उन्हें जैन धर्म में दीक्षित किया था।

सम्राट अशोक के पौत्र सम्प्रति के शासन काल में यहां जैन धर्म का सर्वाधिक प्रचार–प्रसार हुआ था।

यहां श्री शीतलनाथ जिनालय में भगवान पार्श्वनाथ की सातवीं सदी में प्रतिष्ठित एक प्रतिमा विराजमान है।

विदिशा पुरातत्व संग्रहालय में सर्वाधिक संख्या मे जैन प्रतिमाएं प्रदिशत हैं जो यहां आस-पास प्राप्त हुई हैं।

विदिशा से तीन कि० मी० दूर वेत्रवती नदी के मध्य एक दस फुट ऊंची शिला के शीर्ष पर दो जैन प्रतिमाएं उत्कीर्णित हैं।

नगर के मध्य राजेन्द्रगिरि नामक पहाड़ी पर एक शिला पर उत्कीर्णित वेदी के ऊपरी भाग में जैन प्रतिमा निर्मित है।

नगर के पश्चिमी सीमांत पर स्थित ठाकुर भैरोंसिंह की हवेली के प्रांगण में, उत्खनन काल में, लगभग ४० वर्ष पूर्व जैन मंदिर के भग्नावशेष प्राप्त हुए थे जिनमें अनेक विशाल एवं कलापूर्ण प्रस्तर खंड व जैन प्रतिमाएं प्राप्त हुई थीं। यहीं प्राप्त भगवान शीतलनाथ की पांच फुट ऊंची, अति मनोज्ञ, भूरे कत्थई वर्ण की पाषाण निर्मित पद्मासन प्रतिमा प्राप्त हुई थी जो दि० जैन मन्दिर, माधवगंज, में विराजमान है। भगवान पार्श्वनाथ की ६ फुट ऊंची एक

खड्गासन प्रतिमा व अन्य कुछ प्रतिमाएं स्थानीय पुरातत्त्व संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

कुछ वर्ष पूर्व विदिशा-उदयगिरि मार्ग पर दुर्जनपुरा नामक स्थान पर एक किसान को खेत में तीन पद्मासन जैन प्रतिमाएं उपलब्ध हुई थीं। इनमें से दो प्रतिमाओं के पादपीठ पर लेख अंकित हैं। ये प्रतिमाएं प्रारम्भिक गुप्त काल का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा इनका समकालीन मथुरा कला से काफी साम्य है। पादमूल में उत्कीर्ण लेखों से महाराज रामगुप्त द्वारा जैन धर्मावलम्बन एवं जैन धर्म के प्रति उनकी आस्था प्रकट होती है। लांछनों के अनुसार दो प्रतिमाएं भगवान चन्द्र प्रभ की व एक भगवान पुष्प दंत की हैं।

प्राचीन विदिशा-वेसनगर से उत्खनन में एक स्तम्भशीर्ष प्राप्त हुआ था जिसपर भगवान शीतलनाथ का लांछन कल्प वृक्ष निर्मित है। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान शीतलनाथ को समर्पित किसी विशाल जिनालय के समक्ष यह भव्य स्तंभ स्थापित रहा होगा। इस कलाकृति में गुणों के अनुरुप कल्पवृक्ष की साकार कल्पना की गई है। वर्तमान में यह स्तंभ भारतीय कला संग्रहालय, कलकत्ता, में प्रदर्शित है।

स्थापत्य की दृष्टि से उदयगिरि (विदिशा) की गुफा नं० १ भारत की सर्वाधिक प्राचीन गुफाओं में से एक है। इसमें भगवान सुपार्श्वनाथ व एक अन्य तीर्थंकर प्रतिमा, जिसकी अब आकृति मात्र स्पष्ट है, स्थापित है। यहीं गुफा नं० २० में निर्मित भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा मध्य प्रदेश की सर्वाधिक प्राचीन प्रतिमा है।

विदिशा की पूर्व दिशा में, ३३ कि० मीटर दूर, विध्याचल पर्वत माला की तलहटी में ग्यारसपुर नामक एक साधारण ग्राम है किन्तु प्राचीन काल में यह एक विशाल एवं समृद्ध नगर था। यहां के गिरि शिखर भगवान शीतलनाथ की तपस्थली रहे हैं। वर्तमान में पर्वत के दक्षिणी सिरे पर, दसवीं शताब्दी में निर्मित, एक अति कलापूर्ण एवं विशाल जिनालय स्थित है। इस मन्दिर में तीर्थंकरों एवं शासन देवियों व पक्षियों की अनेक रमणीय मूर्तियां उत्कीर्णित हैं।

फीरोज शाह तुगलक के शासन काल में आचार्य महासेन ने देहली के दो राज्यमान विद्वान रघु व चेतन को शास्त्रार्थ में हराकर जैन धर्म की ध्वजा फहराई थी।

(शेष पृष्ठ २४७ पर)

यशोभद्रसूरिगच्छ

— डॉ० शिव प्रसाद

निर्ग्रन्थ दर्शन के श्वेताम्बर आम्नाय के अन्तर्गत चन्द्रकुल का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस कुल से समय-समय पर अस्तित्व में आये विभिन्न गच्छों में यशोभद्रसूरिगच्छ भी एक है। यशोभद्रसूरि जिनके नाम पर इस गच्छ का नामकरण हुआ, इसके आदिम आचार्य माने जा सकते हैं।

जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यशोभद्रसूरि के पश्चात् उनकी शिष्य-सन्तति यशोभद्रसूरि गच्छ के नाम से जानी गयी होगी। इस गच्छ से सम्बद्ध मात्र दो साक्ष्य मिलते हैं। उनमें से प्रथम साक्ष्य है सिद्धसेनसूरि (पूर्व नाम साधारण कवि) द्वारा वि० सं० ११२३/ ई० सन् १०६७ में रची गयी **विलासवइ**[1] (**विलासवती**) नामक कृति की प्रशस्ति[2]। इसके अनुसार वाणिज्यकुल, कोटिक-गण और वज्रशाखा के अन्तर्गत चन्द्रकुल प्रसिद्ध हुआ जिसमे अनेक प्रसिद्ध आचार्य और मुनिजन हुए। प्रसिद्ध जैनाचार्य बप्पभट्टिसूरि इसी गच्छ के थे। इनकी परम्परा में आगे चलकर यशोभद्रसूरि नामक आचार्य हुए। उनके नाम पर उनकी शिष्य-सन्तति यशोभद्रसूरिगच्छीय कहलायी। आगे चलकर शांति-

---

(पृष्ठ २४६ का शेष)

भट्टारक परम्परा में स्पष्ट उल्लेख है कि विदिशा (भद्दिलपुर) में मूलसंघ के २६ भट्टारकों की पीठ रही है। सत्ताइसवें भट्टारक श्री महाकीर्ति भद्दिलपुर से अपनी पीठ उज्जैन ले गए थे। श्री शीतलनाथ दि० जैन मदिर की प्रथम वेदी में भट्टारक श्री महाकीर्ति की ३० इंच ऊंची, कृष्ण पाषाण निर्मित, अंजुली मुद्रा में, पीछी लिए हुए, दुर्लभ प्रतिमा प्रतिष्ठित है। प्रतिमा पर विस्तृत लेख भी उत्कीर्णित है।

आगम के उल्लेख, इतिहासज्ञ विद्वानों के अभिमत तथा विदिशा के प्राचीन वैभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान विदिशा (प्राचीन भद्दिलपुर) ही दसवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ की जन्म भूमि है तथा उनके दीक्षा एव ज्ञान कल्याणक भी यहीं सम्पन्न हुए थे। उदयगिरि के समीप, जैन समाज विदिशा ने 'श्री दिगंबर जैन शीतल विहार न्यास' के नाम से २७ एकड़ भूमि क्रय कर ली है जहां एक विशाल एवं भव्य समवशरण मन्दिर, श्रमण विहार, गुरुकुल, विद्यालय आदि निर्माण की योजना है। संतों के आशीर्वाद एवं समाज के सहयोग से विदिशा शीघ्र ही अपना प्राचीन गौरव पुनः प्राप्त करने जा रहा है।

सूरि इस गच्छ के नायक बने। मथुरा के आस–पास के क्षेत्रों पर उनका बड़ा प्रभाव था। उनके पट्टधर यशोदेवसूरि हुए। इन्हीं के शिष्य सिद्धसेनसूरि अपरनाम साधारणकवि ने वि० सं० ११२३ में अपभ्रंश भाषा में **विलासवइ** नामक कृति की रचना की। इस प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि कवि ने गोपगिरि (वर्तमान ग्वालियर) के निवासी भिल्लमालकुल के साहु लक्ष्मीधर की प्रार्थना पर उक्त कृति की रचना की। प्रशस्ति में ग्रन्थकार ने यद्यपि स्वयं को विभिन्न स्तुतियों–स्तोत्रों का भी रचयिता बतलाया है फिर भी उनमें से मात्र एक स्तोत्र सकलतीर्थस्तोत्र[3]—को छोड़कर अन्य कृतियां आज नहीं मिलतीं।

इस गच्छ से सम्बद्ध द्वितीय और अंतिम साक्ष्य है वि० सं० १२१४ का एक लेख[4] जो महावी मुछाला चैत्य में एक पवासणा पर उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में इस गच्छ के प्रीतिसूरि का नाम मिलता है। इसके बारे में कोई अन्य सूचना प्राप्त नहीं होती।

उक्त साक्ष्यों से इस गच्छ के मुनिजनों का जो क्रम निश्चित होता है, वह निम्नानुसार है :

कोटिकगण, वज्रशाखा और चन्द्रकुल

|

बप्पभट्टिसूरि
[गोपगिरि नरेश आम (नागभट्ट द्वितीय) के समकालीन]

|

यशोभद्रसूरि

|

शांतिसूरि

|

यशोदेवसूरि

|

साधारणकवि अपरनाम सिद्धसेनसूरि
[वि० सं० ११२३/ई० सं० १०६७ में **विलासवइ** के रचनाकर]

|

प्रीतिसूरि [वि० सं० १२१४ के अभिलेख में उल्लिखित]

विलासवइ की प्रशस्ति में चूंकि बप्पभट्टिसूरि के पश्चात् यशोभद्रसूरि नाम आया है, अतः यह माना जा सकता है कि उनके बाद ही यशोभद्रसूरि हुए होंगे। बप्पभट्टिसूरि का काल ई० सन् की आठवीं–नवीं शताब्दी सुनिश्चित है, अतः यह कहा जा सकता है कि यशोभद्रसूरि ई० सं० की नवीं–दसवीं शती के आस-पास हुए होंगे।

इस गच्छ से सम्बद्ध साक्ष्यों की दुर्लभता को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि चन्द्रकुल से उद्भूत अन्यान्य गच्छों की तुलना में इस गच्छ का प्रभाव तथा प्रचार–प्रसार अत्यन्त सीमित रहा। सिद्धसेनसूरि के पश्चात् और प्रीतिसूरि के पूर्व (लगभग एक सौ वर्षों तक) इस गच्छ में हुए मुनिजनों के नामादि के सम्बन्ध में कोई जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। प्रीतिसूरि का भी उल्लेख केवल एक लेख में मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ईस्वी सन् की १२वीं शताब्दी के मध्य भाग तक इस गच्छ का स्वतंत्र अस्तित्व तो रहा, परन्तु इससे जुड़े हुए श्रमणों और श्रावकों की संख्या प्रायः नगण्य ही रही होगी और उनमें भी कोई प्रभावशाली या विद्वान मुनि नहीं हुआ जो सिद्धसेनसूरि द्वारा प्रारम्भ किये गये साहित्य सृजन के कार्य को आगे बढ़ा सके।

संदर्भ–

१– विलासवईकहा—संपा० रमणलाल म० शाह, लालभाई दलपतभाई ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, १९७७ ई०

२– वही, पृष्ठ १९५

३– रमणलाल म० शाह—सम्बोधि, वर्ष ७, अंक १–४ पृ० ९५–१००

४– दौलत सिंह लोढ़ा – श्री प्रतिमा लेख संग्रह, लेखांक ३२४

——

भारत में जैन धर्मावलम्बी

—श्री रमा कान्त जैन

रजिस्ट्रार जनरल एवं सेन्सस कमिश्नर, इण्डिया, नई दिल्ली, द्वारा देश में वर्ष 1991 में हुई जनगणना के आँकड़ों पर विश्लेषणात्मक 'पेपर वन 1995 रिलीजन' प्रकाशित हुआ है। इस पेपर की 'सी-9-रिलीजन टेबिल' में दिये आँकड़ों के अनुसार भारत गणतन्त्र, जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर जहां वर्ष 1991 में जनगणना सम्पन्न नहीं हुई, की कुल जनसंख्या 83,85,83,988 है। इसमें 62,28,12,376 व्यक्ति ग्रामीण अंचल में तथा 21,57,71,612 व्यक्ति नगरीय क्षेत्रों में बसते हैं। इस कुल जनसंख्या में 43,52,16,358 पुरुष तथा 40,33,67,630 महिलाएं है। भारत में प्रमुख धर्म समुदाय जो माने गये हैं वे 6 हैं-हिन्दू, मुस्लिम, क्रिश्चियन, सिक्ख, बौद्ध और जैन। इन प्रमुख धर्म समुदायों के अनुयायियों की भारत गणतन्त्र (जम्मू-कश्मीर को छोड़ कर) में वर्ष 1991 में, उक्त पेपर के पृष्ठ (X) व (XI) पर दिये आँकड़ों के अनुसार जनसंख्या सम्बन्धी तुलनात्मक स्थिति निम्नवत रही :

प्रमुख धर्म समुदाय	कुल जनसंख्या	पुरुष	महिलाएं
हिन्दू	68,76,46,721	35,72,52,833	33,03,93,888
मुस्लिम	10,15,96,057	5,26,31,365	4,89,64,692
क्रिश्चियन	1,96,40,284	98,48,930	97,91,354
सिक्ख	1,62,59,744	86,10,508	76,49,236
बौद्ध	63,87,500	32,72,200	31,15,300
जैन	33,52,706*	17,22,715	16,29,991

*(23,54,988 नगरीय + 9,97,128 ग्रामीण)

भारत की कुल जनसंख्या में जैन मतावलम्बियों का प्रतिशत 0.40 बताया गया है और ध्यातव्य है कि जब मुस्लिम, क्रिश्चियन, सिक्ख बौद्ध, जिनका भारत की कुल जनसंख्या में प्रतिशत क्रमशः 12.12, 2.34, 1.94 तथा 0.76 है, भारत सरकार द्वारा अल्पसंख्यक धर्म समुदाय माने गये हैं तब 0.40 प्रतिशत वाले जैन जन को अल्पसंख्यक धर्म समुदाय की कोटि मे बाहर रखे जाने का कहां औचित्य है ? **वीर** दिनांक 7-11-1995 में साहू रमेशचन्द्र जैन के लेख से यह जानकारी मिली है कि संवैधानिक प्राविधानों, विभिन्न उच्च न्यायालयों के फैसलों, दर्शन और आस्थाओं (मुख्य रुप से ईश्वरवाद बनाम अनीश्वरवाद) की

मूलभूल भिन्नताओं तथा देश में जैनों की समुचित जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने जैनों को एक अलग धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय की मान्यता प्रदान करने तथा तदनुसार भारत सरकार द्वारा 23 अक्टूबर, 1993 की अधिसूचना के साथ निर्गत अल्पसंख्यक समुदायों की सूची में जैनों को सम्मिलित करने पर विचार करने की भारत सरकार से अनुशंसा की है ।

वर्ष 1981 और वर्ष 1991 में हुई जनगणना के दस वर्षों के मध्य जहां भारत की कुल जनसंख्या (असम जहां वर्ष 1981 में जनगणना नहीं हुई थी और जम्मू-कश्मीर जहां वर्ष 1991 में जनगणना नहीं हुई, को छोड़कर) में 23.79 प्रतिशत की तथा अन्य प्रमुख धर्मावलम्बियों की जनसंख्या में 16.89 प्रतिशत (क्रिश्चियन) से लेकर 35.98 प्रतिशत (बौद्ध) तक वृद्धि हुई वहां इस अवधि में जैन धर्मावलम्बियों की संख्या में केवल 4.42 प्रतिशत की वृद्धि ही हुई बताई गई है । उनकी वृद्धि का यह न्यूनतम प्रतिशत जहां एक ओर राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम में उनके जागरुक योगदान का परिचायक है, वहीं इस संभावना को भी बिल्कुल नकारा नहीं जा सकता कि स्वयं जैन मतावलम्बियों को अपनी उदासीनता या समुचित रुचि न लेने अथवा प्रगणकों की अनभिज्ञता के कारण जनगणना पर्चियों में उनके धर्म का सही अंकन होने से रह गया हो । इस संभावना का समर्थन इन तथ्यों से भी होता है कि उक्त जनगणना में 4,15,569 व्यक्तिगत पर्चियों में कोई धर्म इंगित नहीं है और यह कि गुजरात में 79, मध्य प्रदेश में 4, कर्णाटक में 62 और महाराष्ट्र में 47 जैन मतावलम्बियों ने व्यक्तिगत जनगणना पर्चियों में 'धर्म' के खाने में 'जैन' के स्थान पर अपने को 'दिगम्बर' तथा कर्णाटक में 164 और महाराष्ट्र में 21 जैनियों ने अपने को 'श्वेताम्बर' अंकित कराया हैं ।

भारत गणतन्त्र के विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में वर्ष 1991 की जनगणना में जैन धर्मावलम्बियों की जनसंख्या के आंकड़े वर्ष 1981 की जनगणना रिपोर्ट में सूचित आंकड़ों के सापेक्ष निम्नवत हैं :

राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	वर्ष 1981 में जनसंख्या	वर्ष 1991 में जनसंख्या
महाराष्ट्र	9,39,392	9,65,908
राजस्थान	6,24,317	5,62,806
गुजरात	4,67,768	4,91,410
मध्य प्रदेश	4,44,960	4,90,328

कर्णाटक	2,97,974	3,26,340
उत्तर प्रदेश	1,41,949	1,76,259
दिल्ली	73,197	94,672
तमिलनाडु	49,564	66,900
हरयाणा	35,482	35,296
पश्चिम बंगाल	33,663	34,355
आंध्र प्रदेश	18,642	26,564
बिहार	27,613	23,049
पंजाब	27,049	20,763
असम	जनगणना नहीं हुई	20,645
उड़ीसा	6,642	6,302
केरल	3,605	3,641
चण्ड़ीगढ़	1,889	1,531
जम्मू व कश्मीर	1,576	जनगणना नहीं हुई
मणिपुर	975	1,337
हिमाचल प्रदेश	1,046	1,206
नागालैण्ड	1,153	1,202
दादरा एवं नगर हवेली	372	529
गोआ	462	487
पाण्डिचेरी	277	470
मेघालय	542	445
त्रिपुरा	297	301
डामन-ड्यू	140	212
अरुणाचल प्रदेश	42	64
सिक्किम	108	40
अण्डमान निकोबार	11	17
मिजोरम	11	4
लक्षद्वीप	—	—

महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश और कर्णाटक के 1991 के आँकड़ों में पूर्व प्रस्तर में उल्लिखित इन राज्यों में कतिपय महानुभावों द्वारा अपने को 'दिगम्बर' व 'श्वेताम्बर' बताये गये व्यक्तियों की संख्या सम्मिलित कर ली गई है ।

ऊपर दिये गये आँकड़ों में कुछ राज्यों में जैन जनसंख्या में कमी आना और कहीं-कहीं औसत से अधिक वृद्धि होना परिलक्षित होता है। जहां तक हम समझ पाये हैं, इसका मुख्य कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवर्जन (migration) है, न कि धर्म त्याग या धर्म अपनाना जैसा कि सब जानते हैं। वर्तमान में जैन धर्मावलम्बी विशेषकर राजस्थान में, अधिकतर व्यापारी व उद्यमी हैं और उनमें से बहुत से अपने घर से दूर जहां व्यापार-उद्योग की यथेष्ट सुविधा की संभावना हो, बसने के लिये चले जाते हैं। राजस्थान में जैन जनसंख्या में कमी आने तथा व्यवसाय के लिये आवश्यक सुरक्षा-सुविधा में कमी-बेशी के आधार पर पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मेघालय, सिक्किम और मिज़ोरम में जैन जनसंख्या का ह्रास तथा आंध्र प्रदेश, मणिपुर, नागालैण्ड व अरुणाचल प्रदेश में इसकी वृद्धि का यह कारण हो सकता है। पंजाब और चण्डीगढ़ में व्याप्त आतंकमय वातावरण वहां जैन जनसंख्या के ह्रास का कारण प्रतीत होता है। देश की राजधानी होने के नाते दिल्ली में जैनों की संख्या भी बढ़ना स्वाभाविक ही है। दादरा एवं नगर हवेली, पाण्डिचेरी और डामन-ड्यू ने उन्हें इधर विशेष आकर्षित किया प्रतीत होता है। जैसे भारत की कुल जनसंख्या तथा अन्य प्रमुख धर्म समुदायों की जनसंख्या में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या कम है, वैसे ही जैन धर्मावलम्बियों की संख्या में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या कम है। उनका अनुपात प्रति 1000 पुरुष 946 महिला का है। किन्तु उपलब्ध आँकड़ों के अध्ययन से यह रोचक तथ्य उजागर हुआ कि कम से कम गुजरात, राजस्थान, केरल, तमिलनाडु, मणिपुर, अण्डमान-निकोबार द्वीप और दादरा एवं नगर हवेली के ग्रामीण अंचलों में जैन श्राविकाएं श्रावकों से संख्या में अधिक हैं।

मूक पशु की आवाज

— श्री कैलाश भूषण जिन्दल

पशु किसी न्यायपालिका में अपने पक्ष में स्वयं बहस करने में असमर्थ हैं। उनके पास धन भी नहीं है कि वह कोर्ट–फीस जमा कर सकें और अपनी ओर से बहस करने के लिए किसी वैतनिक अधिवक्ता को खड़ा कर सकें। अतएव शोधादर्श का कर्तव्य बनता है कि उनके पक्ष को मानव–जाति के समक्ष रखे।

हम पहले संविधान के कुछ अनुच्छेद रखेंगे जिनमें "सत्वेषु मैत्रिम्" की भावना है। फिर कुछ महानुभावों के विचार उद्धृत करेंगे जिनसे हमारे पाठकों को पता चले कि विशाल पशुवधशालाओं को लाइसेन्स प्रदान कर शासन द्वारा किस प्रकार संविधान का खुल्लम–खुल्ला उल्लंघन किया जा रहा है।

भारतीय संविधान —

अनुच्छेद ४८–राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परीक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाएगा।

अनुच्छेद ४८ क– राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद ५१ क– भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह— (छ) प्राकृतिक पर्यावरण, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, की रक्षा करे और उनका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखे।

पं० जवाहर लाल नेहरु ने कहा था—

मैं बहुधा इस दुविधा में पड़ जाता हूं कि पशु–पक्षी हमारे विषय में क्या सोचते होंगे। अगर भगवान उन्हें शक्ति देता, तो वह मनुष्य का कैसा चित्रण करते? वह चित्रण किसी प्रकार से भी प्रशंसात्मक न होता। हम अपनी सभ्यता और संस्कृति का कितना भी डंका पीटें मनुष्य आज भी उतना ही जंगली है जितना वह लाख वर्ष पहले था और बनैले पशुओं से कहीं अधिक खतरनाक है।

आर० के० खत्री बनाम भारत सरकार में दिल्ली के उप-न्यायाधीश श्री सी० के० चतुर्वेदी ने दिनांक १६-१२-१९९२ के **ऐतिहासिक निर्णय** के प्रस्तर ६१-६२ (अनुवाद) में निम्नलिखित विद्वत्तापूर्ण विवेचना दी—

"जब तक कृषि स्थायी रूप से आरम्भ नहीं हुई थी, पशु ही मनुष्य के भोजन का साधन था। यह उस समय की माँग थी, और मनुष्य अपनी मांग की पूर्ति के लिए हर प्रकार के बल का प्रयोग करता था। सभ्यता के आगमन पर, मनुष्य पेड़-पौधों से प्राप्त भोजन पर निर्भर होने लगा। आज सारे विश्व का भोजन कृषि प्रधान है। आज सघन कृषि और हर फसल में अधिक उत्पादन प्रोद्योगिकी का विषय बन गया है। यद्यपि साँग-सब्जी ने मांस का स्थान ले लिया है, लोग आखेट के नाम पर चोरी से या खुले-आम शिकार करने से बाज नहीं आते। जो कुछ मार कर लाते हैं, उसे घर में विजयोपहार मानकर सजाते हैं। जो पहले भोजन मात्र था, वह अब एक विशिष्ट व्यंजन बन गया है। वैज्ञानिकों ने भोजन में जैव अवयवों की खोज की। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जैसे परमाणु में प्रोट्रोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रान होते हैं, हमारे भोजन में कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन, विटामिन और चर्बी होती है। इसलिए इन अवयवों के आधार पर भोजन का वर्गीकरण किया गया। इसके बाद किस भोज्य पदार्थ में कितने पोषक तत्व हैं, उसका निरीक्षण किया गया। आज संतुलित आहार में जावत प्रोटीन को बहुत महत्व दिया जा रहा है। दूध या वनस्पति से प्राप्त प्रोटीन पशुओं से प्राप्त प्रोटीन से घटिया समझी जाती है। आज हर घर, भोजनालय और प्लेट-फार्म पर भोजन का दो भागों में वर्गीकरण कर दिया गया है- सामिष और निरामिष। राजकीय अतिथियों को और राजकीय अतिथिगृहों में मांगने पर विशिष्ट स्वाद के सामिष व्यंजन परोसे जाते हैं।

जिन सुदूर क्षेत्रों में कृषि उपज नहीं पहुँच पाती, वहां की अनुसूचित जन-जातियां आज भी आदिम दशा में रह रही हैं। आश्चर्य तो उन सभ्य जातियों पर आता है जिन्हें कृषि उत्पादित भोजन आसानी से सुलभ है फिर भी उन्होने पाषाण काल की आदतें अभी तक नही छोड़ी और मांस को अधिक उपयोगी और शक्तिप्रद समझकर, उसके सेवन में लगे हुए हैं। एक कुटुम्ब में बच्चे जैसा बड़ों को देखते हैं, वैसी ही खाने के विषय में अपनी प्रवृत्ति बना लेते हैं। मांसाहार का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, उस ओर उनका ध्यान नहीं जाता। जीने के लिए एक जीव दूसरे जीव से प्रतिस्पर्धा करे इसकी अब कोई

(शेष पृष्ठ २५६ पर)

चिन्तन कण

— श्री अजित प्रसाद जैन

कासी कोसल के नौ मल्ल नौ लिच्छवी राजा

कल्प सूत्र में वर्णन आता है कि जिस रात्रि को श्रमण भगवान महावीर का निर्वाण हुआ उस रात्रि को कासी देश के नौ मल्ल तथा कोसल देश के नौ लिच्छवी राजा भी पावा नगरी में किसी सम्मिलन में भाग लेने हेतु आए हुए थे। उन्होंने भी पावानगर के असंख्यात श्रद्धालु जनों के साथ भगवान का निर्वाण महोत्सव मनाया तथा यह सोच कर कि भाव-ज्योति चली गई पर उनके द्वारा प्रज्वलित ज्ञान दीप सदैव प्रकाशमान रहे, इस भावना से हम द्रव्य-ज्योति प्रज्वलित कर जगती के अंधकार को दूर करने का प्रयास करें, चारों ओर अगणित दीप मालाएं जला दीं जिससे कार्तिकी अमावस्या की वह काली रात प्रकाश से जगमगा उठी।

भगवती सूत्र तथा **आवश्यक चूर्णी** में उल्लेख आता है कि केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान का तेरहवां वर्षावास वज्जि संघ की वैशाली के बाद दूसरी मुख्य नगरी मिथिला में हुआ था। वर्षावास के उपरान्त ग्रामानुग्राम विहार करते हुए तथा भव्य जीवों को संबोधते हुए भगवान जिस समय चम्पा नगरी पहुंचे तो उस समय मगध व वैशाली के बीच भयंकर युद्ध छिड़ चुका था तथा इसमें कासी-कोसल के नौ मल्ल तथा नौ लिच्छवी राजा भी वैशाली की ओर से भाग लेने के लिए अपनी-अपनी सेना सहित आए हुए थे।

यह महायुद्ध एक वर्ष से अधिक समय तक चला। इसमें अन्ततः छल-बल तथा अभिनव यंत्र (रथमूसल) और शस्त्र (महाशिलाकण्टक) आदि की

(पृष्ठ २५५ का शेष)

आवश्यकता नहीं है। पशुओं में भी वही प्राण है जो मनुष्य में, जब हमें भोजन के अन्य साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं तो निर्दोष अबोध प्राणियों की निर्मम हत्या का कोई औचित्य नहीं है। जो पशु को अपना भोजन बनाते हैं उनके दृष्टिकोण में द्विभाजन है। वह स्वीकार करते हैं कि पशु हत्या बुरी है, पर इसके लिए वह निज के बजाय कसाई को दोषी ठहराते हैं। उन्होंने कोई हत्या नहीं की। डिब्बे में बंद बाजार में सैकड़ों उत्पाद बिकते हैं। टिन के डिब्बों में बन्द तरकारी और गोश्त की कोई माँग न हो या खपत न हो, तो गोश्त के बन्द डिब्बे दुकानों पर सजे नही मिलेंगे।" ★

सहायता से मगधराज कुणिक–अजातशत्रु ने वैशाली को बुरी तरह पराजित कर दिया तथा युद्ध से उजाड़ हुई भूमि पर गदहों से हल चलवा दिए। कहते हैं कि महाभारत युद्ध के उपरान्त इसके पूर्व इतना भयंकर नर संहार किसी युद्ध में नहीं हुआ।

वैशाली का पराभव तो हुआ पर इससे वज्जि संघ समाप्त नहीं हुआ। भगवान का चौदहवां वर्षावास भी मिथिला में ही हुआ तथा पन्द्रहवां व सत्रहवां वाणिज्यग्राम में हुए जिससे प्रतीत होता है कि युद्ध से क्षत–विक्षत एवं आहत जनता को शान्ति प्रदान करने के लिए तीन-चार वर्षों तक मुख्यतया लिच्छवियों के प्रदेश में ही वह ग्रामानुग्राम विहार करते रहे, परिणाम स्वरुप वैशाली भी पुन: बस गई तथा भगवान का १८वां व १९वां वर्षावास वैशाली में ही हुआ।

वैशाली के युद्ध में कासी–कोसल के नौ, मल्ल तथा नौ लिच्छवी गण राजाओं ने भी भाग लिया था तथा उन्होंने कालान्तर में भगवान के निर्वाण महोत्सव में भी पावानगर में भाग लिया था। यहां एक शंका यह होती है कि कोसल देश को जीत कर तो श्रावस्ती के राजा ने अपने राज्य में मिला लिया था और वह कोसलाधिपति कहलाने लगा था तथा इसी प्रकार मगधराज ने कासी को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था, तो यह फिर कासी–कोसल के नौ मल्ल व नौ लिच्छवी गण राजा कहां से आए। हमें ऐसा लगता है कि यद्यपि इन देशों के बहु भाग विजित हो गए थे, किन्तु कुछ भागों में जो मल्लों की राज्य सीमा से जुड़े हुए थे गणराजाओं के अधिकार में ही चलते रहे तथा उनमें गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था ही चलती रही और वे वज्जि संघ से भी जुड़े रहे। कदाचित् संघ शक्ति के कारण ही तब तक उनका पराभव करना श्रावस्ती व मगध के राजाओं के लिए संभव नही हो सका होगा।

इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता तथा प्राचीन इतिहास वेत्ता डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार अग्रोहा (हरियाणा) में आग्रेय गणतन्त्र की स्थापना करने वाले महाराज अग्रसेन एक लिच्छवी कुमार ही थे जो वैशाली के पराभव के बाद विभिन्न परिवारों के १७–१८ अन्य लिच्छवी कुमारों के साथ राजसत्तात्मक राज्यों को लांघते हुए सुदूर पश्चिम में आकर बस गए। लिच्छवी तथा मल्ल क्षत्रियों ने जहां कहीं भी नए राज्यों की स्थापना की उन्होंने गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को ही अपनाया। स्वतन्त्रता की स्वच्छ वायु में जीने वालों को राजतन्त्र की बन्द वायु की घुटन कभी रास नहीं आई।

भगवान महावीर का अन्तिम धर्मोपदेश तथा उनका धर्म परिवार

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में अनुश्रुति है कि भगवान महावीर की दिव्य देशना जीवन के अन्तिम क्षण तक होती रही। उनका अन्तिम उपदेश **उत्तराध्ययन** के ३६ अध्ययनों में संकलित माना जाता है। प्रवर्तक श्री कुन्दन ऋषि जी महाराज ने इस घटना का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

"उस घोर अन्धेरी रात्रि में पावापुरी का परिसर प्रभु के अन्तिम उपदेशों की ज्ञान-ज्योति से आलोकित हो रहा था। **उत्तराध्ययन** के ३६ अध्ययनों की देशना के पश्चात सैंतीसवां अध्ययन फरमाते हुए प्रभु पर्यंकासन में स्थित हो गए। भगवान ने तब बादर काययोग में स्थित होकर बादर मनोयोग बादर वचनयोग का निरोध किया। फिर सूक्ष्म काययोग में स्थित होकर बादर काययोग को रोका, वाणी और मन के सूक्ष्म योग को रोका। शुक्ल ध्यान के 'सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात' नामक तृतीय चरण को प्राप्त कर सूक्ष्म काययोग का भी निरोध किया और 'समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति' नामक शुक्ल ध्यान का चौथा चरण प्राप्त किया। पुनः अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण काल जितनी शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर चतुर्विध अघाती कर्म फल का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त अवस्था को प्राप्त किया।" (**जिनवाणी**, अक्टूबर १९९५, पृष्ठ ६७)।

अन्तिम समय तक धर्मोपदेश देते रहना तीर्थंकर प्रकृति जन्य प्राणि कल्याण की उत्कट भावना को दर्शाता है। किन्तु इस अनुश्रुति की यथार्थता पर एक प्रश्न चिन्ह लगता है। क्या भगवान उस घोर अन्धेरी रात्रि में रात भर या रात्रि के चौथे प्रहर में धर्म देशना देते रहे थे जबकि उनकी धर्म सभा में कृत्रिम प्रकाश (दीपक, मशाल आदि से) की व्यवस्था हिंसा मूलक होने के कारण की नहीं गई होगी? रात्रि में तो साधारण साधु भी मौन धारण किये रहते हैं और प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं कराते।

दिगम्बर आम्नाय की मान्यता के अनुसार तो तीर्थंकर प्रभु की दिव्य ध्वनि प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल इन तीनों संध्याओं में छह-छह घड़ी तक निरन्तर खिरती है। अन्य समय में केवल गणधर देवों की शंकाओं का समाधान करते हैं।

श्वेताम्बर आगमों के अनुसार भगवान महावीर के धर्म परिवार में ग्यारह गणधर, सात सौ केवली, पाँच सौ मनःपर्याय ज्ञानी, तेरह सौ अवधिज्ञानी, तीन सौ साधक चौदह पूर्वधारी, चार सौ साधक वादी, सात सौ साधक वैक्रिय लब्धि

धारी, आठ सौ अनुत्तरोपपातिक मुनि, १४००० साधु, ३६००० साध्वियां, एक लाख उनसठ हजार श्रावक और तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएं थीं।

कदाचित् ये संख्या किसी एक समय की न हो कर भगवान के सम्पूर्ण तीर्थंकर काल की होगी। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि भगवान के ग्यारह गणधर गिनाए गए जब कि नौ गणधर उनके जीवन काल में ही दिवंगत हो गए और उनके स्थान की पूर्ति नए गणधरों की नियुक्ति से नहीं की गई। भगवान के समवशरण में केवली परिषद् (केवलज्ञानियों के अलग बैठने के स्थान) का भी उल्लेख किया गया है पर हमारी अल्प बुद्धि में यह नहीं आता कि अन्य केवली जो ज्ञान सम्पदा में तीर्थंकर भगवान के समकक्ष होते हैं तथा कृत-कृत्य होते हैं, तीर्थंकर के समवशरण में किस प्रयोजन से जा कर बैठते थे।

भगवान महावीर के धर्म परिवार के विषय में दिगम्बर आम्नाय के आगमिक ग्रन्थों में कोई इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

यह एक रोचक तथ्य है कि भगवान बुद्ध के जीवन काल में उनके केवल १२५० ही भिक्षु शिष्य बने थे तथा उनके अन्त समय उनका केवल एक ही शिष्य, आनन्द, उनके साथ था। ★

सव्वे पाणा पियाऊया, सुहसाया दुक्खपडिकूला,
अप्पियवहा पियजीविणो, जीविउकामा,
सव्वेसिं जीवियं पियं, नाइवाइज्ज कंचणं।

अर्थात्—

सर्व प्राणियों को आयु प्रिय है। सुख सब को साताकारी—अनुकूल है और दुःख सब को प्रतिकूल।

वध सब को अप्रिय है और जीवन सब को प्रिय। सर्व प्राणी जीने की कामना करते हैं।

सब को जीवन प्रिय है।। अतः किसी प्राणी की हिंसा मत करो।

—आचाराङ्ग

——

THE OCCULT

— Dr. Shashi Kant

The occult relates to a supposed phenomenon which is more a product of mind than of brain. It is subjective and tends to be subtle. Intution, comtemplation and meditation help in realising the occult or the mystic around us. In its finer aspect it may raise us spiritually, make us cultivate a mental attitude which will not allow us to deviate from conscious integrity and from a considearte behaviour towards others. But in its baser aspect it will make us a hypocrite who exploits the credulousness of those in distress or who are of fickle mind. The former will not brag or boast, and will like to be left in peace, only occasionally communicating his thought-churning so that it may add to the treasure of knowledge. The other variety will don a robe or otherwise put up a ridiculous appearance and do all sorts of acrobatics to attract attention so that the measly credulous surround them to be exploited and fleeced. The world is full of such parasites, and the wolves are never short of the sheep.

Human body has a magnetic field like any other energised object. It is also an organism with life. Brain is an organ which monitors the organism. Mind is the seat of consciousness, thought, volition and feeling, in substance the life-force, which is not visible and hence, cannot be located. It thus permeates the whole being, and may be treated as synonymous with the Semitic 'spirit' and the Indian 'soul'.

As a highly energised magnetic organism, human body responds, reacts, attracts, repels, receives and transmits. Two persons generally react and interact in relation to their magnetic responses. It also draws benefic or malefic from the environment much in the same manner as the plants inhale carbon di-oxide and exhale oxygen while the animals take in oxygen and give out carbon di-oxide to complete the cycle of life. So, there must be good and bad both to make the

world going. And these are not absolute realities, so that if somebody is good to me it is not necessary that he is good to everybody, and likewise for the bad. But as the conscious frame grows and a person cultivates the mind on a subjective and subtler plane, the propensity to draw the benefic and to dilute the malefic from the environment develops. We may call it spiritual development or intellectual refinement, and it seems to be a step in the direction of sainthood in common parlance.

A person who proposes to rise intellectually and spiritually through cultivation of his/her mind, will not go homeless to become dependant upon others to keep the body and soul together. It is the fool or the knave who will shirk responsibilities to become a parasite on the society, and more often it is the latter who now finds greater opportunity to exploit the credulous and gullible masses by making a nexus with the abominable in real life The abominable is declared a devout and the knave is decorated as a Swamiji or Mataji or whatever other reverential designation in different sects. A declared possessionless, he/she can amass untold wealth; an avowed presonification of humility, he/she is a pillar of egoism and has an unasatiated hunger for command and domination; and with the chastity lock on, he/she may indulge in natural and not-so-natural pranks to gratify the sex urge. This species draws the malefic from the environment and is the anti-thesis of a saint, but they are the most saintly of saints because the *netas* and *seths* are too eager to pump life of reverence into them through all sorts of gimmicks and propaganda, in their own interest.

If rationally interpreted the planetary position in a birth chart may indicate the propensities to draw the benefic and malefic from the environment. Good position of Jupiter may indicate better level of intelligence and temperance; Venus may indicate better aesthetic sense and warmth; Mars may indicate a fighting spirit; Saturn may indicate common sense; Moon may indicate imaginativeness; Sun may indicate aggressiveness ; and

(शेष पृष्ठ २६४ पर)

समणसुत्तं

हिन्दी पद्यानुवाद (क्रमशः)—श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास'

१२. अहिंसासूत्र

१४७. एयं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ कंचण ।
अहिंसासमयं चेव, एतावंते वियाणिया ॥१॥

हिंसा न करना प्राणियों की यह सुखद व्यवहार है ।
ज्ञानियों के ज्ञान का यह ही जगत में सार है ॥
हिंसा रहित समता सहित पर्याप्त इतना जानना ।
इस सार को ही धर्म का स्वरूप निश्चित मानना ॥१॥

१४८. सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥२॥

जीने की इच्छा कर रहे हैं जीव इस जग में सभी ।
मृत्यु कोई चाहता नहीं प्राणी स्वयं मन से कभी ॥
प्राण वध को इस लिए निश्चित भयङ्कर जान कर ।
त्याग देते हैं मुनि जन कार्य वर्जित मान कर ॥२॥

१४९. जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाणं वा, ण हणे णो वि घायए ॥३॥

रह रहे हैं जीव जितने सकल इस संसार में ।
त्रस स्थावर भी तथा समस्त लोक अपार में ॥
ज्ञान या अज्ञान से साधु उन्हें मारे नहीं ।
घात उनका न करावे अन्य जन से भी कहीं ॥३॥

१५०. जह ते न पिअं दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं ।
सव्वायरमुवउत्तो, अत्तोवम्मेण कुणसु दयं ॥४॥

मानव ! तुझे दुःख प्रिय नहीं अपने लिए व्यवहार में ।
अन्य जीवों को भी दुःख भाता नहीं संसार में ॥
पूर्ण आदर भाव एवं सावधानी से सदा ।
आत्म उपमा दृष्टि से करना दया तुम सर्वदा ॥४॥

१५१. **जीववहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ ।**
ता सव्वजीवहिंसा, परिचत्ता अत्तकामेहिं ॥५॥
हर जीव का वध भव्य मानव ! वध अपना जानिये ।
हर जीव पर करना दया निज पर दया भी जानिये ॥
आत्म कामी मनुजगण ने इस लिए ही सर्वदा ।
कर दिया परित्याग जग में जीव हिंसा का सदा ॥५॥

१५२. **तुमं सि नाम स चेव, जं हंतव्वं ति मन्नसि ।**
तुमं सि नाम स चेव, जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि ॥६॥
जिस को हनन के योग हे मानव ! तू जग में मानता ।
तू स्वयं ही जीव है वह तथ्य न पहचानता ॥
जिस को निज शासन में रखना चाह रहा है तू तथा ।
वह तुम्हीं हो जान लो इस तथ्य को भी सर्वथा ॥६॥

१५३. **रागादीणमणुप्पाओ, अहिंसकत्तं त्ति देसियं समए ।**
तेसिं चे उप्पत्ती, हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा ॥७॥
जिस मनुज के मन में उत्पन्न राग है होता नहीं ।
जान लो पावन अहिंसा जन्म लेती है वहीं ॥
राग उत्पत्ति ही हिंसा है इसे पहचान लो ।
कथन यह जिन देव का है सत्य इस को मान लो ॥७॥

१५४. **अज्झवसिएण बंधो, सत्ते मारेज्ज मा व मारेज्ज ।**
एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥८॥
हिंसा वृत्ति में राग से ही कर्म बन्धन हों सभी ।
जीव के मरने न मरने से न अन्तर हो कभी ॥
इस तथ्य का विधान निश्चय दृष्टि के अनुसार है ।
जग प्राणियों के कर्म बन्धन का यही आधार है ॥८॥

१५५. **हिंसादो अविरमणं, वहपरिणामो य होइ हिंसा हु ।**
तम्हा पमत्तजोगो, पाणव्ववरोवओ णिच्चं ॥९॥
विरत हिंसा से होना कार्य हिंसा हैं यथा ।
भाव भी हिंसा का रखना कर्म हिंसा का तथा ॥
इस लिए प्रमाद का संयोग मानव जान लो ।
प्राण घातक सर्वदा है तथ्य यह पहचान लो ॥९॥

१५६. णाणी कम्मस्स खयत्थ-मुट्ठिदो णोट्ठिदो य हिंसाए ।
अवदि असढं अहिंसत्थं, अप्पमत्तो अवधगो सो ॥१०॥
ज्ञानी पुरुष होता है उद्यत कर्म क्षय हेतु सदा ।
वह नहीं तय्यार हिंसा के लिए होता कदा ॥
भाव निश्छल से अहिंसा हेतु करता यत्न है ।
प्रमाद हिंसा से रहित होता वही मुनि रत्न है ॥१०॥

१५७. अत्ता चेव अहिंसा, अत्ता हिंसति णिच्छओ समए ।
जो होदि अप्पमत्तो, अहिंसगो हिंसगो इदरो ॥११॥
आत्मा ही है अहिंसा और हिंसा सर्वदा ।
सिद्धान्त द्वारा ही यह निश्चय है किया जाता सदा ॥
वह अहिंसक जो प्रमत्त होता नहीं व्यवहार में ।
प्रमत्त मानव ही बने हिंसक सदा संसार में ॥११॥

१५८. तुंगं न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि ।
जह तह जयंमि जाणसु, धम्ममहिंसासमं नत्थि ॥१२॥
मेरु पर्वत सम जगत में उच्च ज्यों कुछ भी नही ।
विस्तार नभ सा अन्य वस्तु का नहीं होता कहीं ॥
कर्म शुभ कोई जगत में और न इतना महान ।
दीख पड़ता धर्म न कोई अहिंसा के समान ॥१२॥

१५९. अभयं पत्थिवा ! तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥१३॥
मुनि कहें हे पार्थिव ! निर्भय है तू संसार में ।
तुम अभय दाता बनो अपने सकल व्यवहार में ॥
जीव लोक अनित्य में तू क्यों भला ऐसे जिये ।
आसक्त क्यों तू हो रहा है व्यर्थ हिंसा के लिये ॥१३॥

(पृष्ठ २६१ का शेष)

Mercury may indicate harmony. Of the constellations, the significant ones are the Crab and the Scorpion; the Crab stands for tenacity and the Scorpion may lead to treachery. The malefic natural tendencies can be as much controlled and cultured as the genetic strains of criminality or idiocy, through effort. It is *me* alone who can make or mar my personality and destiny, is the *summum bonum* of occultism and mysticism to my mind.

साहित्य सत्कार

अंधकार से प्रकाश– ले० मुनि रवीन्द्र कुमार; प्रकाशक–श्री शान्ति लाल जैन कर्नावट 'ईश', ५०, इन्दिरा गांधी नगर, इन्दौर–४५२००६; मूल्य रु० २.५०; प्रथम आवृत्ति–मार्च १९९२

आचार्य श्री तुलसी के सुशिष्य मुनि श्री रवीन्द्र कुमार ने खड़ी बोली के १५५ दोहों में प्राकृत भाषा में निबद्ध उपांग **रायपसेणी** सूत्र का अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस उपांग में वर्णित भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में मुनि केशी स्वामी तथा कैकेय देश के राजा पएदेसी के संवाद–प्रश्नोत्तर के आख्यान को मुनि श्री ने इस लघु काव्य कृति में बड़ी रोचक शैली में प्रस्तुत किया है।

उपाध्याय मुनि श्री कामकुमार नन्दी जी की ६ कृतियां– प्राप्तिस्थान श्री विवेक जैन, २२९/१, कृष्ण पुरी, मुजफ्फरनगर-२५१००२ :—

(१) श्रावक धर्म के मौलिक सिद्धान्त– पृठ ५४

इसमें श्रावकाचार का स्थूल रुप में वर्णन प्रश्नोत्तर शैली में किया गया है।

(२) घर घर चर्चा रहे धर्म की– पृष्ठ ९३.

इस पुस्तक में भी प्रश्नोत्तरों के रूप में जैन धर्म, दर्शन व संस्कृति का सामान्य परिचय कराया गया है।

(३-४) कुन्थ–कनक धर्म विज्ञान, भाग १ व २– पृष्ठ ३३ (प्रत्येक)

ये दोनों पुस्तिकाएं भी प्रश्नोत्तर शैली में हैं। प्रथम भाग में णमोकार मंत्र व तीर्थंकर परिचय दिया गया है। पृष्ठ ५ पर आचार्य पुष्पदंत एवं भूतबली को भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य के पूर्व हुआ लिखा है जो इतिहास सम्मत नहीं है। भाग २ में देव-दर्शन विधि, शास्त्र-गुरु का स्वरूप, बारह भावना, सोलह कारण भावना, षट् लेश्या, २२ परीषह, तीर्थंकर माता के सोलह स्वप्न, आदि का परिचय दिया गया है।

उपरोक्त चारों पुस्तिकाएं बालोपयोगी हैं तथा इनमें जैन धर्म का प्राथमिक परिचय बड़े सरल ढंग से कराया गया है।

(५) भोजन–कब ? कहां ? कैसे– पृष्ठ ६१

इस पुस्तिका में जैन धर्म सम्मत आहार विज्ञान का विवेचन २२ अभक्ष्य तथा रात्रि भोजन त्याग सहित किया गया है। जैन धर्म का आहार विज्ञान मूलत:

जीव दया पर आधारित है। शाकाहार में भी ऐसे वनस्पति जन्य पदार्थों के सेवन का निषेध किया गया है जो अनन्त कायिक हैं या जिनमें क्षुद्र त्रस जीवों की उत्पत्ति होती हो या जो तामस हों।

(६) पंच कल्याणक—वैज्ञानिक विवेचन– पृष्ठ ८४

उपाध्याय श्री के अनुसार पंच कल्याणक प्रतिष्ठा विधि में हम तीर्थंकर प्रभु के जीवन की गर्भ से मोक्ष तक की यात्रा के पांच उन विशिष्ट प्रसंगों को प्रस्तुत करते हैं जो उनके जीवन की विशिष्ट घटनाएं व प्रभावोत्पादक मोड़ होते हैं तथा जिनके चिन्तवन एवं दर्शन से उतरोत्तर विकास होता है। पुस्तक में गर्भ कल्याणक के प्रसंग में तीर्थंकर माता के सोलह स्वप्न तथा स्वप्न दर्शन का विवेचन, जन्म कल्याणक में सौधर्मेन्द्र द्वारा तीर्थंकर शिशु का सुमेरु पर्वत की पांडुक शिला पर क्षीर सागर के निर्मल जल से अभिषेक का वर्णन तथा ज्ञान कल्याणक के प्रसंग में दिव्य ध्वनि का विशद विश्लेषण किया गया है। मोक्ष कल्याणक को उपाध्याय श्री ने आध्यात्मिक स्वाधीनता का तथा आध्यात्मिक महोत्सव का दिन कहा है।

सभी पुस्तकों की छपाई व गैट-अप सुन्दर हैं।

राजस्थान के जैन अतिशय क्षेत्र–परिचय एवं पूजा–सम्पादक–डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल; प्रकाशक–सर्वश्री गट्टूलाल ताराचन्द अग्रवाल, पचेवर (टोंक); पृष्ठ ११३; मूल्य–नित्य पूजा पाठ

इस पुस्तक में राजस्थान के २४ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्रों के परिचय सहित उनकी पूजाओं का संकलन प्रस्तुत किया गया है। चूंकि इसमें राणकपुर आदि श्वेताम्बर जैन तीर्थों का वर्णन नहीं है, इसलिए अच्छा होता यदि पुस्तक का नाम 'राजस्थान के दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र' रखा जाता। श्री गट्टूलाल जी अग्रवाल, पचेवर, अपने पाँच अन्य भाइयों सहित अपने पूज्य पिता श्री की पुण्य स्मृति में प्रतिवर्ष कोई न कोई धार्मिक रचना प्रकाशित कर वितरण करते रहते हैं। उनका धर्म प्रेम सराहनीय है।

आचार्य श्री विद्यासागर की तीन कृतियां– प्राप्ति स्थान–श्री विजय कुमार जैन लक्ष्मी प्रिसिजन स्क्रूज लि०, हिसार रोड, रोहतक–१२४००१ :-

(१) शब्द-शब्द–विद्या का सागर– पृष्ठ २८१
(२) चेतना के गहराव में– पृष्ठ ६३
(३) मुक्तक शतक

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एक उत्कृष्ट संत होने के साथ-साथ कुशल कवि, चिन्तक एवं विचारक हैं। अहिन्दी भाषी दाक्षिणात्य होने पर भी हिन्दी भाषा पर आचार्य श्री का अद्भुत अधिकार है। उपरोक्त तीनों पुस्तकों में आचार्य श्री की कतिपय आध्यात्मिक एवं दार्शनिक काव्य कृतियों के संकलन प्रस्तुत किए गए हैं। **शब्द-शब्द–विद्या का सागर** मे आचार्य श्री की तीन कृतियां– नर्मदा का निर्मल कंकर, डूबों मत लगाओ डुबकी, तथा तोता क्यों रोता, को एकीकृत रुप में प्रस्तुत किया गया है। **मुक्तक शतक** मुक्तक पदों का संकलन हैं जिनमें मुख्यत: आत्मा के गुणों पर चिन्तन किया गया है। आचार्य श्री कुशल शब्द शिल्पी हैं। उनकी उपरोक्त सभी काव्य कृतियों में आध्यात्मिकता, वैचारिकता एवं दार्शनिकता का अद्भुत संगम है।

गोलालारे जैन जाति का इतिहास—ले० श्री रामजीत जैन, एडवोकेट; प्रकाशक-श्री वीर सेन जैन सर्राफ, सदर बाजार, भिण्ड; पृष्ठ ३६७; मूल्य-१०० रु०

कई जैन जातियों (जैसवाल, बरैया, खरौवा, विजयवर्गीय) के इतिहास को निबद्ध करने वाले विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में गोलालारे जैन जाति का इतिहास प्रस्तुत किया है। इस धर्मनिष्ठ जैन जाति के उद्गम के विषय में उपलब्ध विभिन्न कथानकों का दोहन करके लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इसका उद्गम आठवीं शताब्दी के लगभग ग्वालियर से हुआ। आज भी यह जाति मुख्यत: बुन्देलखंड व उसके निकटवर्ती क्षेत्र में ही निवास करती है। यद्यपि इस जाति की जनसंख्या कुछ सहस्रों की ही है, सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक क्षेत्र में इसका उल्लेखनीय योगदान रहा है। विद्वान लेखक ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठा अर्जित करने वाले इस जाति के पुरुषों एवं महिलाओं के सचित्र जीवन परिचय भी पुस्तक में सम्मिलित किए हैं। इस जाति के वैवाहिक रीति-रिवाजों की तथा विभिन्न प्रदेशों–क्षेत्रों में बसे परिवारों की संख्या आदि के विषय में भी जानकारी दी गई है। गोलालारे जैन जाति के विषय में विभिन्न प्रकार की जानकारी जुटाकर पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने के लिए विद्वान लेखक का श्रम सराहनीय है। पुस्तक संग्रहणीय है।

--अजित प्रसाद जैन

वन्दना-रचयिता (स्व०) फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु', लखनऊ; प्रकाशक-जैन मिलन, लखनऊ; पृष्ठ संख्या ८७ + ७ + आवरण; मूल्य दस रुपये

प्रस्तुत कृति में कविवर फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु' के संक्षिप्त परिचय के साथ वन्दना, जय महावीर, आह्वान, सिद्धान्त, राजुल-नेमि, भजन-प्रसून और मंजिल,

इन सात शीर्षकों में माँ शारदा के वरदपुत्र, प्रातिभ स्वरों के धनी, उक्त कवि के ६७ भजन, गीत एवं आध्यात्मिक रचनायें डा० महावीर प्रसाद जैन द्वारा संकलित की गयी हैं। इसका प्रकाशन भारतीय जैन मिलन की लखनऊ शाखा ने किया है। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, ने भी जैन मिलन को इस प्रकाशन में सहयोग स्वरूप पांच हजार रुपये दिये हैं। सरस्वती वन्दना से प्रारम्भ यह कृति कवि की जिन भक्ति, जैन सिद्धांत विषयक उसके ज्ञान, उसकी उदात्त भावनाओं और उसके अन्तस् की पीड़ा को उजागर करती है और उपयुक्त, प्रांजल, सुबोध शब्दावली द्वारा उसकी भावाभिव्यञ्जना का परिचय देती है तथा पाठकों को सत्कर्म करने के लिए प्रेरित करती है। कागज-मुद्रण आदि से उपयुक्त यह प्रकाशन काव्य-प्रेमियों तथा भक्तों द्वारा संग्रहणीय है।

—रमा कान्त जैन

जैन अभिलेख परिशीलन—ले० डा० कस्तूर चन्द्र जैन 'सुमन'; प्र० वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, १३१४, अजायबघर का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर; पृ० ६२; १९९४; मू० रु० ११.५०

पुस्तक के लेखक डा० कस्तूर चन्द्र जी "सुमन" जैन विद्या संस्थान, श्री महावीर जी, के वरिष्ठ विद्वान एवं प्रभारी हैं। उन्होंने इस कृति में जैन अभिलेखों के क्रमिक विकास, प्रकाशन और उनके भाषा सम्बन्धी तत्त्वों पर प्रकाश डाला है। जैन अभिलेख दो तरह से उत्कीर्ण मिलते हैं, पाषाण पर और धातु फलकों पर। पाषाण पर मिलने वाले अभिलेख प्रतिमाओं के आसन पर, प्रतिमाओं के पृष्ठ भाग पर, तीर्थंकरों एवं आचार्यों के चरण चिन्हों पर, स्तम्भ, गुफा, मान-स्तम्भ, मन्दिर की वेदिका, चौकोर शिला फलक, ध्वज-स्तम्भ इत्यादि पर उत्कीर्ण हैं। धातु फलक—ताम्रपट्ट, पीतल एवं गिलट धातु से निर्मित प्रतिमाओं, मेरू, यंत्रलेख, सिद्ध प्रतिमाओं आदि पर उत्कीर्ण हैं। सामाजिक आधार पर इन्हें राजनैतिक अभिलेख एवं सांस्कृतिक अभिलेख, दो भागों में विभाजित किया गया है।

सद्यः ज्ञात जैन अभिलेखों में प्राप्त सूचनाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन द्वारा लेखक ने जैन समाज का विस्तृत चित्रण किया है, साथ ही सामाजिक पद व्यवस्था, संघ व्यवस्था तथा विभिन्न राजवंशों का सप्रमाण परिचय भी दिया है। व्यक्तियों के नामकरण का रोचक विवेचन है। अन्य अभिलेखीय तथ्य भी सुव्यवस्थित ढंग से संजोये गये हैं।

ये अभिलेख, जैन धर्म और जैन संस्कृति के दर्पण हैं, तथा भारतीय संस्कृति को जानने-समझने के प्रामाणिक स्रोत हैं। भारत का प्राचीन इतिहास तभी से विधिवत् प्रस्तुत किया जा सका है, जब से इनके अध्ययन-अनुशीलन की ओर ध्यान दिया गया है।

प्रस्तुत परिशीलन शोधार्थियों और विद्वतजनों के लिए विशेष उपयोगी है, तथा पुस्तकालयों में संग्रहणीय है।

—डा० शोभा लाल जैन, जयपुर

इतिहास के अधखुले पृष्ठ (एक पारदर्शी कृति)—लेखक—श्री शरद कुमार साधक; प्रकाशक—जय जगत प्रकाशन, ५०, संत रघुवर नगर, सिगरा, वाराणसी; पृष्ठ ८८; मूल्य रु० ४०/-

लेखक भाई शरद कुमार जी साधक ने कुछ ऐसे सत्य और तथ्य प्रस्तुत किए हैं, जो चौंकानेवाले तो हैं ही, इतिहास-विदों और शोध-खोज करने वालों के लिए चुनौती भी हैं। लेखक ने जैन, बौद्ध एवं वैदिक वाङ्मय का मन्थन/आलोड़न करके जो निष्कर्ष और सम्भावनाएं व्यक्त की हैं, वे सोचने को विवश कर देती हैं। सुदूर प्रारम्भिक पाषाण-युग से लेकर आज परमाणु-युग तक विगत लाखों वर्षों में मानवप्राणी का उद्गम और विकास कैसे-कैसे हुआ, उसने कैसे-कैसे आंतरिक और भौतिक प्रयास/प्रयोग किये, उसके मूल आधार क्या और कैसे थे—आदि बातों का बड़ी गहराई से विवेचन लेखक ने किया है।

लेखक ने एक बिल्कुल अनोखे ढंग से, जैन आचार-विचार एवं दर्शन-प्रणाली का मंथन करके श्रमण संस्कृति की विशेषताओं को आत्मसात् करके तथा वैदिक वाङ्मय की कथाओं में निहित विसंगतियों/असंगतियों का विश्लेषण करके बतलाने का प्रयास किया है कि समग्र मानवजाति के, समाज के, राष्ट्र के, विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए हमारी आखें खुली होनी चाहिए और हृदय उदार होना चाहिए। श्रमण-संस्कृति के पुरस्कर्ता आदि जिनेश्वर ऋषभ थे, जिन्होंने समाज-व्यवस्था के लिए असि-मसि-कृषि-कला-वाणिज्य आदि का बोध कराया। जीने की कला सिखाई। ब्राह्मण-संस्कृति लगभग राजन्य वर्ग की कठ-पुतली रही और युद्ध, अपहरण, भोग प्रवण शक्तिशाली वर्ग को ईश्वरीय अंश कहने में भी वह आगे रही। पुस्तक में स्थान-स्थान पर श्रमण और ब्राह्मण संस्कृतियों की परस्पर विपरीत विचारधाराओं का नक्शा प्रस्तुत करते हुए लेखक का स्पष्ट मत है कि मानव-समाज की प्रगति और विकास का मूल वह अध्यात्म

है जिसका उपदेश और आचरण त्यागी-तपस्वी मुनियों, श्रमणों, ने किया है। लेखक का यह निष्कर्ष महत्वपूर्ण है कि समाज का सर्वांगीण विकास हिंसा-वृत्ति से नहीं, अहिंसा-संयम और तप-त्याग के आचरण एवं अवधारणा से ही संभव है।

सीधी, सरल शैली में, विपुल प्रमाणों के साथ नया अर्थ प्रदान करने वाली यह कृति अद्भुत और पारदर्शी है। पुस्तक छोटी है, पर इतिहास को नये सिरे से देखने-समझने की दृष्टि और सामग्री इसमें भरपूर है। कालखंड एवं घटना प्रसंग के परिचायक कतिपय चित्र इसकी संग्रहणीयता बढ़ाते हैं। नया दृष्टिकोण, अहिंसक कर्म प्रधान विचार, देने वाली कृति के प्राज्ञ लेखक को अनेक धन्यवाद !

—जमनालाल जैन
सारनाथ, वाराणसी

मंगलाष्टक **Benediction,** pp. 24
नित्यपूजा **Jaina Worship,** pp. 16
अभिषेक पाठ **Consecration,** pp. 16

The three booklets were published by Shanti Saubhagya Sahitya Prakashan, 376/40 Saadatganj, Lucknow, on 7-12-1994 on the occasion of Panch Kalyanak Pratistha at Sravasti. The original Sanskrit text has been rendered into English in prose by Sri K. B. Jindal. Translation is lucid and helps in understanding the meaning of the text.

आचार्य मानतुङ्ग कृत भक्तामर स्तोत्र **Bhaktamar Stotra**, pp. 48, publishers as above.

The original Sanskrit has been rendered into Hindi and English by Dr. Nemi Chand Jain, Indore. It is the latest translation of this Stotra. Hindi translation is in blank verse and English rendering is in prose. They help in better understanding of the text.

जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन—ले० डा० शिव प्रसाद; प्र० पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी-२२१००५; १९९१; पृ० ६+७८+३३४; मूल्य रु० १००/-

प्रस्तुत अध्ययन जिनप्रभसूरि के **कल्पप्रदीप**, अपरनाम **विविधतीर्थकल्प** (वि० सं० १३६४-१३८६ = ई० १३०७ से १३३२) पर मूलतः आधारित है। यह डा० शिव प्रसाद के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच०डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध का संशोधित रूप है।

अपनी २८ पृष्ठीय विद्वत्तापूर्ण भूमिका में प्रो० सागरमल जैन ने जैन धर्म में तीर्थ के महत्व, अर्थ और अर्थ-विकास, तथा तीर्थों के सम्बन्ध में दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नायों में उपलब्ध साहित्य का विवेचन किया है।

भौगोलिक विभाजन के परिप्रेक्ष्य में ७८ तीर्थों का साहित्यिक और पुरातात्विक सामग्री के सापेक्ष डा० शिवप्रसाद द्वारा वर्णन किया गया है। अध्ययन नौ अध्यायों में विभक्त है, सन्दर्भों से युक्त है और मानचित्रों, विस्तृत सहायक ग्रन्थ सूची तथा अकारादिक्रम सूचियों ने शोधार्थियों के लिये इसकी उपयोगिता में वृद्धि की है।

श्री हजारीमल बाँठिया अभिनन्दन पत्रिका—प्रकाशक—श्री हजारीमल बाँठिया सम्मान समारोह समिति, २७-A, साकेत कालोनी, अलीगढ़; पृष्ठ २८४ + रंगीन एवं श्वेत-श्याम चित्र; २४-६-१९९५

यह अभिनन्दन पत्रिका श्री बांठिया को उनके ७२वें जन्म दिवस पर एक भव्य समारोह में राजस्थान भवन, कानपुर, में २४-६-१९९५ को समर्पित की गई। श्री बाँठिया के बहु-आयामी व्यक्तित्व एवं विभिन्न क्षेत्रों में उनके सक्रिय अभिदान का विस्तृत ब्यौरा इसमें संकलित है जिसका श्रेय मुख्यतः संयोजक श्री तनसुखराज डागा और सम्पादक डा० गिरीजकिशोर अग्रवाल को जाता है। उनके व्यक्तित्व में जो सर्वप्रमुख बात है वह है कि वह एक स्वशिक्षित और स्वनिर्मित व्यक्ति हैं। पिता का साया बचपन में ही उठ जाने से वह स्कूली शिक्षा इन्टर स्तर तक ही प्राप्त कर सके परन्तु साहित्य, समाज, धर्म, राजनीति और व्यवसाय—सभी क्षेत्रों में आपने अपना वर्चस्व स्थापित किया। बीकानेर में जन्मे, हायरस में इनका प्रथम कार्य स्थल रहा और उसके बाद कानपुर में आपका प्रधान कार्यस्थल रहा। श्री बाँठिया के प्रेरणादायी व्यक्तित्व से उनकी सन्तान और मित्र तो प्रभावित हैं ही, अन्य युवा वर्ग भी कर्मठता और आशावादिता की सीख उससे ले सकता है।

जैन सिद्धांत भास्कर प्राच्य दुर्लभ पाण्डुलिपि विशेषांक—The Jaina Antiquary Manuscripts Special Issue, Vol. 47-48, 1994-95 (Joint Special Issue), pp. XV + 503 + 4; Price Rs. 100/-

श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा, में संग्रहीत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी (जिसमें बोलियाँ भी सम्मिलित हैं) में लिखित और प्रायः नागरी लिपि में लिपिबद्ध हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का ६ भागों में प्रकाशन करने की योजना श्री देव कुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान के नियोजकों के विचाराधीन है। इस प्रथम खण्ड में क्रमांक १ से ६६७ पर भवन के अभिलेखों में अंकित पाण्डुलिपियों का catalogue निम्नलिखित वर्गीकृत विवरण के अन्तर्गत दिया गया है—

Sl. No.; Library Accession or Collection No.,if any ; Title of work; Name of Author; Name of Commentator; Material, Script & Language; Size and number of folio, lines per page and letters per line; Extent; Condition and Age; Additional particulars (e. g., published, missing, other name, copyist, etc.)

इन्हें विषय-विभाग के अनुसार भी वर्गीकृत किया गया है—

१. पुराण, चरित, कथा २. धर्म, दर्शन, आचार ३. न्यायशास्त्र ४. व्याकरण, ५. कोश, ६. रस, छन्द, अलंकार, काव्य ७. ज्योतिष, ८. यंत्र, कर्मकाण्ड, ९. आयुर्वेद १०. स्तोत्र, और ११. पूजा-पाठ विधान।

कैटलॉग में अंकित पाण्डुलिपियों का आदि वाक्य, अन्तिम वाक्य और प्रशस्ति (Colophon) परिशिष्ट में दिये गये हैं।

डा० गोकुल चन्द्र जैन ने अपनी भूमिका में अन्य प्रकाशित ग्रन्थ सूचियों के सापेक्ष इस सूची की विशेषताओं का विवेचन किया है। प्रकाशक श्री अजय कुमार जैन और प्रधान सम्पादक डा० राजा राम जैन ने प्रकाशन योजना को स्पष्ट किया है। इस ग्रन्थावली का सम्पादन डा० ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार' द्वारा विशेष सावधानी, परिश्रम और लगन से किया गया है।

१९०३ में जैन सिद्धांत भवन की स्थापना बा० देव कुमार जी द्वारा की गई थी जिन्होंने अपने पितामह बा० प्रभुदास द्वारा शौकिया हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह को एक संस्थागत रूप प्रदान किया। उन्हीं बा० प्रभुदास के पांचवीं पीढ़ी के बा० सुबोध कुमार और छठी पीढ़ी के श्री अजय कुमार अभी उस परम्परा को चालू रखे हुए हैं, यह एक पारिवारिक उपलब्धि है।

यह ग्रन्थावली शोधार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है। इसको संपादित और प्रकाशित करने वाले सभी महानुभावों को इस परिश्रम-साध्य कार्य को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने के लिए हमारा हार्दिक साधुवाद !

—डा० शशि कान्त

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

नवोदित भाग्योदय तीर्थ, अमरकण्टक

सागर (म.प्र.) के समीप अमरकन्टक में पू० आचार्य श्री विद्यासागर जी म० की सद्प्रेरणा एवं आशीर्वाद से यह क्षेत्र सर्वोदय या भाग्योदय तीर्थ के रूप में विकसित किया जा रहा है। भूमि-पूजन शिलान्यास के दो दिवसीय कार्यक्रम में आचार्य जी ने अपने मंगल प्रवचन में इसे सेवा का तीर्थ बनाने की प्रेरणा दी। डा० अमरनाथ जैन ने क्षेत्र का परिचय देते हुए बताया कि यह तीर्थ दि० जैन समाज का मानव कल्याण की दिशा में एक अनूठा प्रयास है। यहां पर २२ करोड़ की लागत से ३०० शय्या वाले अस्पताल की परिकल्पना की गई है जहां गरीब रोगियों को नि:शुल्क इलाज व भोजन, उनके परिवार जनों को रुकने के लिए धर्मशाला तथा ज्ञानार्जन के लिए पुस्तकालय की व्यवस्था होगी।

इस नवोदित भाग्योदय तीर्थ के लिए श्री बाबूलाल जी, जयश्री आयल मिल, दुर्ग, ने स्वद्रव्य से आदि तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की पीतल की २० टन की १० फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा निर्मित कराई है जिसका १६ जुलाई १९९५ को सागर नगर में प्रवेश पर समाज ने सहस्रों की संख्या में उपस्थित होकर भव्य स्वगात किया तथा मूर्ति को विद्यारथ में विराजमान कर जैन मन्दिर के सामने ले जाया गया। वहां से विद्यारथ का गमन कुण्डलपुर को हो गया जहां मूर्ति चार महीने रहेगी तथा मूर्ति की सफाई व तराशने का कार्य आचार्य श्री के दिग्दर्शन में होगा।

हम नवोदित भाग्योदय तीर्थ का सेवा तीर्थ के रूप में विकास किये जाने का हार्दिक स्वागत करते हैं। वस्तुत: अब समय आ गया है जब हमारे सभी तीर्थों पर नव मन्दिर निर्माण के स्थान पर सेवापरक संस्थाओं के निर्माण एवं दक्षतापूर्ण संचालन पर बल दिया जाना चाहिए जो बिना किसी भेद-भाव के सम्पूर्ण मानव समाज की सच्ची सेवा करें। चिकित्सा सेवा यदि सही मायनों में नि:शुल्क या अल्प व्यय में सुलभ करने की व्यवस्था किसी तीर्थ क्षेत्र पर की जाती है तो वह उत्तम है, पर हमारे अपने विचार में यदि हम अपने तीर्थ क्षेत्रों पर सामान्य चिकित्सा सेवा जो प्राय: हर जगह उपलब्ध है, के बजाय विशेषज्ञ चिकित्सा सेवा (जैसे कैंसर, हृदय रोग या अन्य जटिल रोग) के विशिष्ट केन्द्र

स्थापित कर सकें तो वह अत्युत्तम होगा। या फिर आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा का ऐसा विशिष्ट संस्थान स्थापित किया जाय जहां निर्दोष बहु हिंसा रहित औषधियों (जैसे जड़ी-बूटियों, काष्ठादिक द्रव्यों, पर आधारित औषधियां) का शास्त्रोक्त शुद्ध निर्माण हो और इस प्रणाली के सुयोग्य चिकित्सकों द्वारा चिकित्सा सुविधा उपलब्ध की जावे जिससे विशेषकर त्यागी-व्रती जन भी लाभान्वित हो सकें।

पंचम, षष्टम और अब तृतीय पट्टाचार्य भी

नागपुर की दि० जैन समाज ने तीर्थ रक्षा शिरोमणी पूज्य आर्यनन्दी जी मुनिराज को उनकी ८६वीं जन्म जयन्ती के सुअवसर पर इस युग के प्रथम दिगम्बर जैन आचार्य चारित्र चूड़ामणि पू० श्री शान्तिसागर जी म० की परम्परा में दक्षिण के तीसरे पट्टाचार्य की उपाधि अर्पित की। यह आचार्य श्री के दक्षिण के प्रथम शिष्य स्व० मुनिराज श्री वर्द्धमान सागर म० को प्रथम पट्टाचार्य तथा उनके शिष्य एवं श्री आर्यनन्दी म० के दीक्षा गुरु आचार्य समन्तभद्र म० को द्वितीय पट्टाचार्य घोषित करके किया गया। (इसके पूर्व श्री आर्यनन्दी जी मुनिराज को बम्बई की दि० जैन समाज द्वारा आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जा चुका था।)

हम ३६ वर्षों से निर्दोष श्रमण चर्या पालन करते आ रहे, परम निस्पृही, सरल परिणामी, वयोवृद्ध मुनिराज श्री आर्यनन्दी जी म० का आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किए जाने पर हार्दिक अभिनन्दन करते हैं तथा उनके चरणों में अपनी विनयांजलि अर्पित करते हैं। पर उन्हें दक्षिण के तृतीय पट्टाचार्य की उपाधि से अलंकृत किया जाना हमें कुछ अटपटा सा लगा।

इस समय स्व० चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर म० की शिष्य परम्परा में पंचम पट्टाचार्य (श्री वर्द्धमान सागर म०) तथा षष्टम पट्टाचार्य (श्री अभिनन्दन सागर म०) पहले से ही एक ही समय में विचरण कर रहे हैं। अब आ० श्री आर्यनन्दी जी महाराज को दक्षिण परम्परा का तृतीत पट्टाचार्य घोषित करने से लगता है कि आचार्य श्री शान्ति सागर म० के धर्म पट्ट (या साम्राज्य) को भी उत्तर व दक्षिण में विभक्त कर दिया गया है तथा अब अमुक उत्तर के पट्टाचार्य और अमुक दक्षिण के पट्टाचार्य कहलाने लगेंगे। वह दिन भी कदाचित अब दूर नहीं है जब एक ही आचार्य की परम्परा में प्रदेश-वार पट्टाचार्य होने लगेंगे।

परमागम मन्दिर निर्माण योजना

हमें ज्ञानयोगी स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति पंडिताचार्य स्वामी जी श्री जैन मठ मूडबिद्री (कर्नाटक) की ओर से एक पत्रक मूडबिद्री में परमागम मन्दिर की निर्माणाधीन योजना के विषय में प्राप्त हुआ है। परमागम मन्दिर में परमागम ग्रंथराज **षट्खंडागम--धवल, जयधवल--महाधवल** मार्बल के सात फुट लम्बे तथा ढाई फुट चौड़े प्रस्तर खंडों पर उत्कीर्ण कराकर स्थायी रूप से संरक्षित करने की योजना है जिस पर अस्सी लाख रुपए की लागत अनुमानित की गई है। पत्रक में धर्मानुरागी जिनवाणी-भक्त धर्म-बन्धुओं से योजना में मुक्त हस्त से दान देने की अपील की गई है। दातारों को आकर्षित करने के लिए रु० ५०१/– से लेकर रु० २१००१/– की विभिन्न दान राशियों के दातारों के एक नाम से लेकर उसके परिवार के पांच सदस्यों के नाम तथा दो के चित्र भी उसी प्रस्तर खंड पर अंकित करने का प्राविधान भी रखा गया है। इस प्रकार दातारों के स्थायी विज्ञापन की पक्की व्यवस्था की गई है।

दिगम्बर जैन समाज श्री जैन मठ मूडबिद्री के जिनवाणीभक्त भट्टारकों का चिर ऋणी रहेगा जिन्होंने सिद्धांत ग्रन्थ राज **षट्खंडागम** तथा **कषाय पाहुड** की (**धवला, जयधवला** तथा **महाधवला** टीका सहित) एक मात्र ताड़प्रति को संरक्षित रख कर इन महा ग्रन्थों को विलुप्त होने से बचा लिया। यदि इन ग्रन्थों को मारबल प्रस्तर खण्डों पर अंकित करके स्थायी रूप से संरक्षित करने की योजना कागज व मुद्रण के युग के पूर्व बनाई गई होती तो योजना की सार्थकता निर्विवादास्पद होती क्योंकि ताड़ पत्रों का जीवन अति सीमित होता है तथा जिस प्रकार महाधवल ग्रन्थ का कुछ भाग नष्ट हो गया, सम्पूर्ण ग्रन्थ राज के नष्ट होने या क्षत-विक्षत होने की भयावह संभावना बनी रहती, किन्तु अब जबकि ये महान् ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं तथा इनकी सैकड़ों मुद्रित प्रतियां देश के विभिन्न सरस्वती भण्डारों में उपलब्ध हैं तथा अत्यल्प स्थान में स्थायी रूप से संरक्षित रखने के लिए माइक्रो-फिल्मिंग जैसी विधाएं उपलब्ध हो गई हैं, स्थायी संरक्षण के उद्देश्य से इन ग्रन्थों को प्रस्तर खण्डों पर उत्कीर्ण करने की योजना दातारों के स्थायी विज्ञापन की भावना को ही विशेष रूप से प्रश्रय देती प्रतीत होती है। क्या ही अच्छा होता यदि इस योजना पर व्यय की जाने वाली विपुल धनराशि का उपयोग अप्रकाशित प्राचीन साहित्य के सुसम्पादित प्रकाशन पर किया जाता। फिर भी तीस-चौबीसी व तीन-चौबीसी मन्दिरों (जो मन्दिर

कम, एक-रूप तीर्थंकर मूर्तियों के संग्रहालय या गोदामघर अधिक होंगे) की तुलना में तो परमागम मन्दिर की योजना कम स्वागत योग्य नहीं है किन्तु हमारा अपना मत है कि दातारों के स्थायी विज्ञापन की व्यवस्था का जिनवाणी के संरक्षण में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। **षट्खंडागम** तथा **कषाय पाहुड** महा-ग्रन्थों के रचयिता महान् आचार्य पुष्पदन्त, भूतबलि तथा गुणधर ने तो इन ग्रंथों में कहीं अपना नाम भी नहीं दिया है।

श्री चैत्यालय जी की स्थापना

श्री पंचशील नगर, भोपाल, में २७ अगस्त १९९५ को श्री जैन नूतन चैत्यालय जी में श्री जिनवाणी जी की स्थापन कर चैत्यालय जी का शुभारम्भ किया गया तथा श्री **तारण तरण अध्यात्म वाणी** जी ग्रन्थ का स्थापन धार्मिक विधि विधान पूर्वक सम्पन्न हुआ। (**तारण बन्धु**, सितम्बर १९९५)

तारण तरण पंथी बंधु चैत्यालय जी में अर्हन्त प्रतिमा के बजाय श्री जिनवाणी की स्थापना करते हैं। हमारी दृष्टि में इसमें तो कोई बुराई नहीं पर उन्हें श्री तारण तरण स्वामी कृत ग्रन्थ के साथ-साथ ग्रन्थ राज **समयसार, षट्खंडागम** व **तत्त्वार्थ सूत्र** जी आदि आगम ग्रन्थों की भी श्री चैत्यालय में स्थापना करने की दृष्टि अपनानी चाहिए।

विद्वत् परिषद के प्रस्ताव

२४-२५ जुलाई १९९५ को श्री कुन्दकुन्द भारती प्राकृत भवन, नई दिल्ली, में पू० आचार्य विद्यानन्द जी के सानिध्य में एवं साहु अशोक कुमार जी व साहु रमेश चन्द्र जी की उपस्थिति में तथा डा० देवेन्द्र कुमार जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई अ० भा० दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद की कार्यकारिणी समिति की बैठक में निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गए—

(१) २ नवम्बर, १९९४,. को वीर शासन जयन्ति के दिन कलकत्ता में स्थापित विद्वत् परिषद ने अपनी स्थापना के ५० वर्ष पूरे कर लिए हैं। अत: परिषद के स्वर्ण जयन्ति महोत्सव का आयोजन पू० आचार्य श्री विद्यानन्द स्वामी के सानिध्य में, जैन समाज के शीर्ष नेता साहु अशोक कुमार जी के संरक्षकत्व में तथा साहु रमेश चन्द्र जी की अध्यक्षता में करने का निर्णय किया गया।

(२) भारत सरकार से अनुरोध किया जाता है कि भारतीय संविधान में परिगणित भाषाओं की अनुसूची में प्राकृत भाषा को भी सम्मिलित किया जाय और शिक्षण, अनुसंधान, पुरस्कार आदि की वे सभी सुविधाएं प्राकृत भाषा को भी प्रदान की जाएं जो अन्य भारतीय भाषाओं को प्रदान की जा रही हैं।

(३) अभी तक प्रकाशित सूचियों के अनुसार अप्रकाशित जैन पांडुलिपियों की संख्या लगभग एक लाख है **जिनमें प्राकृत की पांडुलिपियों की संख्या दस सहस्र** है जो पर्याप्त सुरक्षा के अभाव में काल कवलित होती जा रही हैं, अत: भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और समाज से अनुरोध किया जाता है कि वह भारतीय लिपि, भाषा, अध्यात्म, दर्शन, आचार, साहित्य, इतिहास, संस्कृति और लोक जीवन के प्रामाणिक दस्तावेजों की अमूल्य धरोहर के स्वरूप इन पांडुलिपियों की सुरक्षा व प्रकाशन की व्यवस्था हेतु उदार आर्थिक सहायता प्रदान करें।

(४) भारत सरकार से अनुरोध किया जाता है कि अन्य भाषाओं की अकादमियों की तरह अपने राष्ट्र की प्राचीनतम जन भाषा प्राकृत के सम्यक् प्रचार-प्रसार और सम्यक् मूल्यांकन हेतु राष्ट्रीय प्राकृत साहित्य अकादमी की स्थापना की जाय।

प्रस्ताव (१) में विद्वत् परिषद की स्थापना २ नवम्बर १९९४ को वीर शासन जयन्ती के दिन हुई बताई गई है। हमें स्मरण नहीं आता कि सन् १९९४ में वीर शासन जयन्ती चार महीने आगे खिसक गई हो जैसी कोई विचित्र घटना घटी हो। अत: या तो '२ नवम्बर' २ जुलाई के स्थान में भूल वश लिख दिया गया होगा या फिर वीर शासन जयन्ती का उल्लेख किसी भ्रम वश कर दिया गया है। स्थापना के पचास वर्ष पूरा करने पर स्वर्ण जयन्ती मनाना उचित ही है। पर हम आशा करते हैं कि विद्वत् परिषद इस सुअवसर पर अपने विगत पचास वर्षों की गतिविधियों का लेखा-जोखा भी समाज के समक्ष प्रस्तुत करेगी कि उसने इस अवधि में धर्म साहित्य के प्रकाशन, प्रचार-प्रसार के लिए तथा समाज से धार्मिक विकृतियों के उन्मूलन के क्षेत्र में एवं श्रमणाचार व श्रावकाचार में आई गिरावट को रोकने के लिए क्या योगदान किया। विद्वत् जन समाज के तथा धर्माचार के मार्ग दर्शक होते हैं। हमें गर्व है कि हमारी विद्वत् परिषद में अनेक प्रबुद्ध विद्वान मौजूद हैं। अच्छा होता यदि स्वर्ण जयन्ति महोत्सव का आयोजन किसी वय वरिष्ठ एवं ज्ञान वरिष्ठ सरस्वती पुत्र की अध्यक्षता में मनाए जाने का निर्णय लिया जाता, पर कदाचित् कार्यकारिणी के सन्मुख आयोजन के लिए धन जुटाने की समस्या भी रही होगी।

प्रस्ताव (२), (३) व (४) भी स्वागत योग्य हैं। प्रस्ताव (३) में यह बड़ी महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है कि प्राकृत भाषा की अप्रकाशित पाण्डुलिपियों की संख्या दस हजार है। विद्वत परिषद ने अवश्य ही उन ग्रन्थागारों को चिन्हित

कर लिया होगा जहाँ ये पांडुलिपियां संग्रहीत हैं। ये सभी ग्रन्थ एक हजार वर्ष से अधिक ही प्राचीन होंगे क्योंकि प्राकृत में लेखन कार्य उसके पूर्व ही हुआ है, बोलचाल की भाषा तो वह और पहले से ही नहीं रह गई थी और उसका स्थान अपभ्रंश भाषा ने ले लिया था। हमारा अनुमान है कि इन अप्रकाशित प्राकृत भाषा के ग्रन्थों में से कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ कुन्दकुन्द भारती प्राकृत विद्यापीठ तथा प्राकृत भाषा के अन्य शोध संस्थानों में अवश्य ही जुटा लिए गए होंगे। कुन्दकुन्द भारती सहित इन सभी शोध संस्थानों की अपनी शोध पत्रिकाओं में इन महत्वपूर्ण ग्रन्थों के पूरे विस्तृत विवरण यदि क्रमिक रूप से प्रकाशित किए जांय तो समाज की जानकारी व रूचि अपनी इस अमूल्य धरोहर के प्रति बढ़ेगी जो इनकी प्रकाशन योजना के लिए भी सहायक सिद्ध होगी।

प्रस्ताव (३) में यह भी आशंका व्यक्त की गई है कि ये दस सहस्र पांडुलिपियां पर्याप्त सुरक्षा के अभाव में काल कवलित होती जा रही हैं। हमारी समझ में इन पांडुलिपियों की सुरक्षा सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य है जिसे कुन्दकुन्द भारती प्राकृत विद्यापीठ व अन्य उस जैसी संस्थाओं को प्राथमिकता के आधार पर अपने हाथ में लेना चाहिए। आज के युग में जब जीर्ण-शीर्ण पांडुलिपियों के लैमिनेशन, प्रतिलिपि करण, माइक्रोफिल्मिंग आदि की सुविधाएं उपलब्ध हैं, यह कोई कठिन कार्य नहीं होना चाहिए। परिषद को तथा प्राकृत भाषा के लिए समर्पित शोध संस्थानों को इस कार्य में इस विषय के विशेषज्ञ जैन विद्वान डा० ओ० पी० अग्रवाल, भूतपूर्व निदेशक, नेशनल रिसर्च लेबोरेट्री फॉर कन्जर्वेशन ऑफ कल्चरल प्रापर्टीज, का सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

यदि हमारे प्रबुद्ध विद्वत् जनों ने इस ओर जागरुकता दिखाई होती तथा हमारे पूज्य आचार्यों, आर्यिका माताओं, भट्टारक स्वामियों को सही मार्ग दर्शन प्रदान किया होता तो तीन-चौबीसी व तीस-चौबीसी मन्दिरों तथा परमागम मन्दिर के निर्माण पर व्यय होने वाली करोड़ों की राशि को अप्रकाशित प्राकृत साहित्य के अनुरक्षण व प्रकाशन की ओर क्या मोड़ा नहीं जा सकता था !

हमें यह देख कर विस्मय भी हुआ और खेद भी हुआ कि विद्वत् परिषद की कार्यकारिणी समिति ने अपनी सारी व्यग्रता प्राकृत भाषा के अप्रकाशित साहित्य की समस्याओं की ओर सरकार का व समाज का ध्यान आकर्षित करने में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ ली। विद्वत् जनों की इस गरिमापूर्ण समिति ने गत अप्रैल मास से समाज को गंभीर रूप से उद्वेलित किए हुए आचार्य सन्मतिसागर प्रकरण तथा उसके परिणाम स्वरूप श्रमण संस्था की प्रतिष्ठा को पहुंचे भारी आघात पर चिन्ता करने व उसका समाधान खोजने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। ★

अभिनन्दन

उच्च न्यायालय, दिल्ली, के पूर्व न्यायाधीश श्री मिलाप चन्द जैन को नवगठित राजस्थान कराधान अधिकरण का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है।

'सर्व जीव मंगल प्रतिष्ठान', पूना के संस्थापक/अध्यक्ष डा० कल्याण गंगवाल को सेठी ट्रस्ट द्वारा इस वर्ष के 'शान्तिसागर शाकाहार पुरस्कार' से सम्मानित किये जाने की घोषणा श्री निर्मल कुमार सेठी ने की है।

डा० मयंक जैन, एम० डी०, रीवा ने अखिल भारतीय सिविल सेवा परीक्षा, १९९४, में १२७वां स्थान प्राप्त कर सफलता अर्जित की है।

रीवा वासी, बिरला इरेक्शन कम्पनी में इंजीनियर, श्री अभिनय जैन विश्वस्तरीय प्रतियोगिता में ईस्ट–वेस्ट सेन्टर, होनोंलुलू, हवाई (अमरीका), की छात्रवृत्ति अर्जित कर सांस्कृतिक विनिमय योजना के अन्तर्गत उच्चतर अध्ययन हेतु हवाई विश्वविद्यालय चले गये हैं।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, के मंत्री एवं शोधाधिकारी तथा **अर्हत् वचन** पत्रिका के सम्पादक डा० अनुपम जैन को जैन शास्त्रों में निहित गणित के अध्ययन एवं अनुसन्धान तथा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की शैक्षणिक व अकादमिक गतिविधियों के संचालन में प्रदत्त विशिष्ट सहयोग हेतु उक्त संस्थान द्वारा ८ अक्तूबर को हस्तिनापुर में एक लाख रुपये का 'प्रथम आर्यिका ज्ञानमती पुरस्कार', प्रशस्ति पत्र, शाल व श्रीफल के साथ भेंट किया गया। अन्य ६२ विद्वानों को भी इस अवसर पर सम्मानित किया गया परन्तु उनके नाम **सम्यग्ज्ञान** के तत्सम्बन्धी विशेषांक (वर्ष २२, अंक ४५) में नही दिये गये, कदाचित वे संस्थान की दृष्टि में उल्लेख करने योग्य नहीं थे।

बम्बई के श्री किशोरचन्द्र एम० वर्धन भारत जैन महामण्डल के ४८वे अधिवेशन के लिए अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं।

तीर्थंकर वाणी के सम्पादक डा० शेखर चन्द्र जैन को उनके साहित्यिक योगदान हेतु श्री दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर, द्वारा 'ज्ञानवारिधि' उपाधि से सम्मानित किया गया।

दर्शन शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० कमलचन्द सोगाणी को जयपुर नगर निगम द्वारा आयोजित जयपुर समारोह-९५ में श्रमण संस्कृति के क्षेत्र में

उल्लेखनीय लोक सेवा कार्य करने पर १८ नवम्बर को एक भव्य समारोह में सम्मानित किया गया।

उपरोक्त सभी महानुभावों का **शोधादर्श** परिवार उनकी सफलता पर अभिनन्दन करता है और अपनी शुभकामना प्रेषित करता है। ★

समाचार विविधा

जैन विश्व भारती, लाडनूं विश्वविद्यालय, द्वारा एक रूसी छात्र श्री क्रिवोव सिरगुई को **'कर्मबन्ध सम्बन्धी कम्प्यूटर गणनाओं'** आदि पर **शोध कार्य** कराने हेतु प्रो० एल० सी० जैन को मार्गदर्शक नियुक्त किया गया है। एतद्विषयक शोध हेतु सुझाव, सहायता, सहयोग के लिए प्रोफेसर साहब से निम्न पते पर सम्पर्क किया जा सकता है :

दीक्षा ज्वैलर्स, ५५४, सराफा, जबलपुर (फोन–३४२८७६)।

बीना (जिला सागर) में व्याख्याता श्री महेश प्रसाद जैन ने मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी, भोपाल, के सचिव डा० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' के निर्देशन में प्रमाणशास्त्र के तलस्पर्शी सूक्ष्म-चिन्तक लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध विद्वान **डा० दरबारी लाल कोठिया** के व्यक्तित्व और कृतित्व विषय पर **शोधकार्य** प्रारम्भ किया है।

१८ से २० अगस्त को कबीर भवन, दमोह, में न्यायाचार्य **डा० महेन्द्र कुमार जैन के स्मृतिग्रन्थ** के सम्पापक मण्डल की बैठक प्रधान सम्पादक डा० दरबारी लाल कोठिया की अध्यक्षता में हुई। इस त्रिदिवसीय बैठक में स्मृतिग्रंथ के ६ खण्डों की सामग्री का यथावत वाचन हुआ और उसे संशोधित-सम्पादित करके प्रकाशनार्थ प्रबन्ध सम्पादक को सौंप दिया गया।

त्वरित ज्ञान प्रसार के इस वैज्ञानिक युग में जैन विद्या से सम्बन्धित शब्दावली की एकरूपता की आवश्यकता को देखते हुए जैन इण्टरनेशनल, अहमदाबाद, ने लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के मार्गदर्शन में अंग्रेजी में ३३०० से अधिक शब्दों की **जैन पारिभाषिक शब्दावली** Glossary of Jaina Terms प्रकाशित की है। इस ग्लासरी के विषय में विशेष जानकारी हेतु डा० शेखर चन्द्र जैन, ६, उमियादेवी सोसायटी-२, अमराई बाडी, अहमदाबाद-२६ से संपर्क किया जा सकता है।

डी–मोन्टफोर्ट विश्वविद्यालय, लेस्टर (ब्रिटेन), में "जैन अध्ययन" के सुव्यवस्थित अध्ययन हेतु जैन केन्द्र, रीवा, के संयोजक डा० नन्द लाल जैन के

प्रयत्न और दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, सतना, एवं प्यारेलाल अमीचन्द ट्रस्ट, बम्बई, के सौजन्य से अब तक लगभग पचास हजार रुपये का जैन साहित्य भेजा जा चुका है ।

भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबन्धन्यासी साहू अशोक कुमार जैन ने आचार्य श्री विद्यानन्द महाराज की दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर आयोजित समारोह में शौरसैनी प्राकृत भाषा और साहित्य के क्षेत्र में कुन्दकुन्द भारती के तत्त्वावधान में प्रामाणिक उच्चस्तरीय शोधकार्य सम्पन्न करने वाले शोधकर्ता विद्वान को भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वारा प्रतिवर्ष इक्यावन हजार रुपये का **'शौरसैनी प्राकृत पुरस्कार'** प्रदान किये जाने की घोषणा की है ।

पुरुलिया से ५३ कि०मी० दूर **पाकबीराग्राम** में, जहां अति प्राचीन ३० दुर्लभ जिन प्रतिमायें एवं अन्य जैन धर्म सम्बन्धी स्मारक वस्तुएं प्राप्त हुई थीं, पश्चिम बंगाल प्रान्तीय महासभा ने जमीन क्रय कर एक **संग्रहालय** का निर्माण कराया है जिसका उद्घाटन ६ फरवरी, १९९६, को होगा ।

गुजरात सरकार ने जैन मन्दिरों के लिए विख्यात **पालीताना** को **पवित्र नगर** घोषित कर उसके आसपास पशुवध और मांस-मदिरा की बिक्री पर रोक लगा दी है ।

देवनार (महाराष्ट्र) में **पशुवधशाला** के **संचालन के विरुद्ध** अखिल भारतीय पशु कल्याण सभा द्वारा दायर **रिट याचिका** बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा **स्वीकार** कर ली गई है ।

२३ नवम्बर से लन्दन के Victoria and Albert Museum में The Peaceful Liberators—Jain Art from India शीर्षक से सर्वप्रथम **अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी** का प्रारम्भ हुआ जिसमें २००० वर्षों में जैन कला की प्रतिनिधि १२० कलाकृतियों का प्रदर्शन किया जा रहा है । इसमें भारत से राज्य संग्रहालय, लखनऊ, लालभाई दलपतभाई संग्रहालय, अहमदाबाद, तथा प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, मुम्बई, से कलाकृतियां भेजी गई हैं ।

२४ से २६ दिसम्बर को फिक्की सभागार, नई दिल्ली, में अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा **छठी विश्व जैन कॉन्फ्रेन्स** आयोजित की जा रही है जिसका मुख्य विषय है '२१वीं शताब्दी में जैन समाज' ।

भारत के बाहर विश्व के जिन प्रमुख नगरों में **जैन मन्दिरों** का निर्माण हुआ है तथा हो रहा है, वे इस प्रकार हैं-संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में : न्यूयार्क, सैन-फ्रांसिस्को, लॉस एंजिल्स, शिकागो और वाशिंगटन; कनाडा में : बैंकूवर, टोरन्टो और ओटावा; इंग्लैण्ड में : लन्दन और लेस्टर; फ्रान्स में पेरिस; और जर्मनी में फ्रैंकफर्ट ।

धार्मिक संस्थानों पर सरकारी नियन्त्रण का विरोध : राजस्थान जैन सभा, जयपुर, ने **तमिलनाडु** सरकार द्वारा प्रस्तावित हिन्दू रिलीजियस एण्ड चैरीटेबिल **अमैण्डमेन्ट एक्ट, १९९५**, को स्वीकृति प्रदान न करने हेतु भारत के महामहिम राष्ट्रपति को ज्ञापन दिया है । **मध्य प्रदेश** सरकार भी हिन्दू एवं जैन मन्दिरों, तीर्थ स्थलों व सामाजिक न्यासों (ट्रस्टों) के प्रबंधन को शासन के अधीन करने हेतु एक अध्यादेश पारित करने जा रही है जिसके अन्तर्गत पूजा-अर्चना, धार्मिक अनुष्ठान, जीर्णोद्धार, नव निर्माण एवं अन्य सभी कार्य शासन की अनुमति के बिना नहीं किये जा सकेंगे । न्यास के ट्रस्टियों का मनोनयन भी सरकार द्वारा किया जायेगा । जिन न्यासों की आय एक लाख से ऊपर होगी उन्हें टैक्स स्वरूप सात प्रतिशत शासन को देना होगा । इस कानून के लागू होने से हिन्दू व जैन समाज के समक्ष राज्य के मन्दिरों, तीर्थों एवं ट्रस्टों द्वारा किये जा रहे जनोपयोगी कार्यों की व्यवस्था व रखरखाव और जीर्णोद्धार का संकट पैदा होने की आशंका से राजस्थान जैन सभा ने मुख्य मंत्री, मध्य प्रदेश, से इसे पारित न करने का अनुरोध किया है ।

वीरापतन, राजगिर, को **भगवान महावीर फाउन्डेशन**, मद्रास, द्वारा ५ लाख रुपये का पुरस्कार मानवता के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत होने के लिए प्रदान किया गया ।

झांसी–दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सांवलिया पार्श्वनाथ करगुवां में २९ सितम्बर से १ अक्तूबर तक त्रिदिवसीय **जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी** छह सत्रों में सम्पन्न हुई । संगोष्ठी का संचालन श्री नीरज जैन, सतना, ने किया । प्रथम सत्र की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानवेत्ता डा० सुधांशु कुमार जैन, लखनऊ, ने की । द्वितीय सत्र में अपने अध्यक्षीय भाषण में मगध विश्वविद्यालय के डा० नलिन कुमार शास्त्री ने वैज्ञानिक चेतना/अवधारणाओं में तर्कों के आधार पर सत्य का संधान करने को कहा और बताया कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं । तृतीय सत्र श्री भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', भोपाल, की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । चतुर्थ सत्र श्री नीरज जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । पंचम सत्र में

श्री यशपाल जैन ने 'धर्म और जीवन' पर विचार व्यक्त किये। इस सत्र में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री मोती लाल वोरा ने अपने भाषण में विभिन्न बिन्दुओं की चर्चा करते हुए विज्ञान के सम्बन्ध में कहा कि इसका उपयोग मात्र मानव कल्याण के लिए किया जाय तभी विकास सम्भव है। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री सुरेश जैन, आई० ए० एस०, ने बताया कि भले ही व्यक्तित्व के बाह्य विकास के लिए आज की विश्व-विद्यालयी शिक्षा कारगर हो, अन्तरंग विकास तो आध्यात्मिक संत के द्वारा मन, वचन और कर्म की शुद्धि के सहयोग से ही सम्भव है। छठा सत्र गोष्ठी में समागत विद्वानों के सम्मान का रहा।

१२ सितम्बर को **राज भवन, लखनऊ** में युवा जैन मिलन, लखनऊ की ओर से **क्षमावाणी पर्व (विश्व मैत्री दिवस)** का आयोजन हुआ। मुख्य वक्ता प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद, ने दशलक्षण धर्म और क्षमावाणी पर्व की महत्ता पर प्रकाश डाला। पूर्व मंत्री डा० सर्वजीत सिंह डंग ने क्षमा के सूत्रों की विवेचना करते हुए कहा कि यदि व्यक्ति अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा याचना कर सके तो विश्व मैत्री का मार्ग अपने आप प्रशस्त हो जाएगा। महामहिम राज्यपाल श्री मोती लाल वोरा ने कहा, 'क्षमा वस्तुतः धर्मांग की अभूतपूर्व महिमा है, तपस्वियों का ज्ञान, विद्या की शोभा, कमजोरों की शक्ति तथा वीरों का आभूषण है। क्षमाधर्म के पालन के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति प्रतिशोध व क्रोध पर काबू रक्खे।'

क्षमावाणी पर्व पर **राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली**, में भी जैन समाज द्वारा **विश्व भ्रातृत्व एवं क्षमा दिवस** आयोजित किया गया जिसमें मुख्य अतिथि महामहिम राष्ट्रपति डा० शंकर दयाल शर्मा थे।

२२ अक्तूबर को **भगवान महावीर कैन्सर चिकित्सालय एवं अनुसंधान केन्द्र**, ए-६५, जर्नल हाउस, जनता कालोनी, जयपुर, के प्रथम न्यासी राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिंह शेखावत को उनके जन्म दिन पर उनके भार के समतुल्य चांदी के सिक्कों की राशि भेंट की गयी। यह राशि ८ लाख १ हजार रुपया, दानदाताओं ने घोषित की। मुख्यमंत्री ने यह राशि चिकित्सालय के निर्माण हेतु न्यास को दे दी। इस चिकित्सालय योजना के प्रेरणा स्रोत और प्रबन्ध न्यासी श्री विद्या विनोद काला हैं।

२६ अक्तूबर को श्री जैन धर्म प्रवर्धिनी सभा महिला मण्डल, लखनऊ, ने **भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव** और महिला मण्डल के उद्घाटन के अवसर पर

मण्डल की अध्यक्षा श्रीमती सुधा जिन्दल द्वारा आलेखित एवं प्रस्तुत नाटक 'चन्दनबाला' का रवीन्द्रालय में सफल मंचन किया। प्राचार्या डा० (कुमारी) कंचन लता सब्बरवाल और श्री राज नाथ सिंह सांसद ने भगवान महावीर के निर्वाण की महत्ता पर प्रकाश डाला।

५ व ६ नवम्बर को दि० जैन अतिशय क्षेत्र बड़ा गाँव, जिला मेरठ, में अ० भा० पत्रकार सम्मेलन एवं सराक सम्मेलन पाँच सत्रों में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में देश भर के लगभग ११२ मूर्धन्य पत्रकार एवं सराक क्षेत्र से लगभग ८० सराक बन्धु उपस्थित रहे। श्री सरल ग्रन्थमाला, बीना, के सौजन्य से पत्र/पत्रिकाओं की एक भव्य प्रदर्शनी भी लगाई गई जिसमें १२० से अधिक प्रकाशन थे। उद्घाटन सत्र में अध्यक्ष श्री साहू रमेश चन्द्र जैन एवं मुख्य अतिथि श्री पी० कुमारमंगलम तथा डा० नलिन शास्त्री, डा० नीलम जैन, श्री रमेश चन्द्र कासलीवाल और प० रवीन्द्र जैन ने सराक क्षेत्र एवं पत्रकारिता के सम्बन्ध में अपने गवेषणात्मक विचार प्रस्तुत किए। द्वितीय सत्र में 'विकास की सम्भावनाएं' विषय पर परिचर्चा हुई। रात्रि में पत्रकारों ने अपनी कवित्व प्रतिभा का भक्ति-सन्ध्या के रूप में परिचय दिया। दूसरे दिन प्रातः १० बजे सराक क्षेत्र से आए बन्धुओं ने अपने क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं को प्रस्तुत किया तथा ब्र० संदीप जी ने प्रदर्शनी के विषय में अपने विचार रखे। अपरान्ह १.३० बजे समापन सत्र में सभी पत्रकारों का आकर्षक किट-बैग एवं प्रतीक चिन्ह से सम्मान किया गया। सभी पत्रकारों ने समाज में एक मुखपत्र की आवश्यकता पर जोर दिया और कहा कि अब तक समाज में कोई ऐसी पत्रिका नहीं है जो समस्त दि० जैनों का प्रतिनिधित्व कर सके। सभी ने एक पत्रकार परिषद्, फीचर सर्विस एवं न्यूज ब्यूरो की स्थापना पर विचार किया। सम्मेलन का संयोजन जैन महिलादर्श की प्रधान संपादिका डा० नीलम जैन ने किया एवं संचालन अर्हत वचन के संपादक डा० अनुपम जैन ने किया। ★

आभार

श्री विद्या विनोद काला, प्रबन्ध न्यासी, भगवान महावीर कैन्सर चिकित्सालय और सम्पादक, डामन्ड वर्ल्ड, जयपुर, से उनके जन्म दिवस पर रु० २५१ की भेंट प्राप्त हुई, जिसके लिए शोधादर्श परिवार उनका आभारी है।

शोक संवेदन

२१ अगस्त, १९९५, को जयपुर में चातुर्मासरत ६५ वर्षीय मुनि श्री दया सागर महाराज का समाधिमरण हो गया।

२५ अगस्त को सासनी (जिला अलीगढ़) में हमारी समिति के माननीय सदस्य, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, समाजसेवी ७५ वर्षीय श्री प्रकाश चन्द्र जैन लुहाड्या का देहावसान हो गया।

३१ अगस्त को आरा में धर्मनिष्ठ श्रावक श्री ऋषभ सुन्दर दास जैन वकील का निधन हो गया।

२० सितम्बर को भिण्ड में ८० वर्षीय सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य पं० शिखर चन्द्र जैन दिवंगत हो गये।

१ अक्तूबर को भारतीय परिवहन उद्योग के शीर्ष व्यक्तित्व (बजाज ऑटो के स्वामी) ७६ वर्षीय सुश्रावक श्री हस्तीमल फिरोदिया की लम्बी बीमारी के बाद पूना में मृत्यु हो गई।

७ अक्तूबर को सिद्धतीर्थक्षेत्र कुण्डलपुर (दमोह) में आचार्य श्री विद्या सागर महाराज के सानिध्य में २ मास से नियम सल्लेखना धारण किये ९५ वर्षीय जिनवाणी मर्मज्ञ, उद्भट विद्वान पं० जगन्मोहन लाल जी शास्त्री, कटनी, ने समाधि ले ली।

७ अक्तूबर को ही नई दिल्ली में महरौली में अहिंसा स्थल के निर्माता, प्रमुख समाजसेवी, ७७ वर्षीय धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री प्रेम चन्द्र जैन (जैन वाच कम्पनी) का देहावसान हो गया और वह जाते हुए अपना नेत्र-दान कर गये।

२७ अक्तूबर को मध्य रात्रि में सैलाना (जिला रतलाम) में ९२ वर्षीय खरतरगच्छाधिपति आचार्य श्री जिनउदयसागर सूरि का स्वर्गवास हो गया।

१ नवम्बर को लखनऊ में धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती आशा देवी जैन (धर्मपत्नी श्री धरणेन्द्र कुमार जैन, चारबाग) का लम्बी बीमारी के बाद निधन हो गया।

२९ नवम्बर को लखनऊ में एक अन्य धर्मनिष्ठ, मुनि एवं तीर्थभक्त श्रावक श्री अजित प्रसाद जैन 'बब्बे जी' का ७३ वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया।

२ दिसम्बर को हमारी समिति के माननीय सदस्य, राज किशन जैन ट्रस्ट और अहिंसा मन्दिर के संस्थापक श्री प्रेम चन्द्र जैन (शाकाहार होटल) का नई दिल्ली में निधन हो गया। वह सुधारवादी विचारधारा के पोषक प्रबुद्ध मनीषी थे।

१० दिसम्बर को उज्जैन में पं० सत्यधर कुमार सेठी की धर्मपत्नी श्रीमती सूरज कुमारी सेठी परलोक सिधार गईं।

शोधादर्श परिवार उपरोक्त के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है, दिवंगत आत्माओं की सद्गति और शान्ति के लिये प्रार्थना करता है, और शोक संतप्त परिवारों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। ★

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श अंक २६ में मैंने प्रथमतः स्वनामधन्य स्व० डा० ज्योति प्रसाद जी के 'समाज के सामने चुनौती' शीर्षक लेख को पढ़ा। वर्तमान में इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। कतिपय मुनिराजों के शिथिलाचार की चर्चा अन्य लेखकों ने भी इसी अंक के अगले कई पृष्ठों पर की है।

'सांचों को फांके पड़ें, लाबर लाडू खांय', यह उक्ति मिथ्या नहीं है। इसी कारण से **शोधादर्श** में श्रद्धेय अजित प्रसाद जी जिस सत्य का उद्घाटन इस दृष्टि से करते हैं कि ऐसे शिथिलाचार की पुनरावृत्ति न हो, अन्य जैन पत्र-पत्रिकाओं के वरिष्ठ सम्पादक उपेक्षा का चश्मा लगा कर पढ़ते हैं और सत्य लिखने का साहस नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में जैन समाज का सुधार हो तो कैसे हो? सम्पादक का कार्य जनता को सही मार्ग दिखलाना है।

जिस घर, समाज या देश में दलबन्दी अधिक हो, उसका कल्याण होना सम्भव नहीं। एक पक्ष जिसे सत्य सिद्ध कर रहा है उसी को प्रतिपक्ष मिथ्या सिद्ध कर रहा हो तो उसका सही निर्णय कैसे होगा?

ऐसी अवस्था में यही उक्ति चरितार्थ होती है कि 'अनायका विनश्यन्ति, नश्यन्ति बहुनायकाः'–जहां कोई किसी को नहीं मानता वहां सही मार्ग कौन दिखला सकता है?

—पं० अमृत लाल जैन शास्त्री
ब्राह्मी विद्यापीठ, लाडनूं

शोधादर्श का २६वां अंक कुछ-कुछ अस्वस्थ होते हुए भी पढ़ गया। साहित्य समीक्षा आप अतीव सूक्ष्मता एवं संतुलनपूर्वक करते हैं। इस अंक की एक विशेषता यह है कि प्रायः सभी धर्मों के प्रवर्तकों या शास्ताओं के मूल वचनों का लिपिकरण कब-कैसे हुआ इसका विवरण एक जगह मिल सकता है। यदि आज का पढ़ा-लिखा तरुण खोजी और खुली आँखों से यथार्थ का दर्शन करे तो यह बात स्पष्ट समझ में आनी चाहिए कि कोई भी वचन या शब्द शास्वत या ईश्वरीय शब्द नहीं है। शब्द-अर्थ-भाव का निरन्तर विकास एवं विस्तार होता रहता है।

—श्री जमना लाल जैन
सारनाथ, वाराणसी

शोधादर्श में आप जैन धर्म की परम्पराओं एवं मान्यताओं का पालन करते हुए जैनेतर विषयों सम्बन्धी जो सामग्री दे रहे हैं, उसकी उपयोगिता असंदिग्ध है। आपके सम्पादकीय एवं विचार-विमर्श में दी गई टिप्पणियां भी विचारोत्तेजक तो होती ही हैं, मन को भी झकझोर कर रख देती हैं। इतनी दो-टूक एवं निर्भीक स्पष्टता किसी भी अन्य जैन पत्र-पत्रिका में देखने को नहीं मिलती।

—डा० महेन्द्र राजा जैन
एलेनगंज, इलाहाबाद

जुलाई मास का अंक वास्तव में संग्रहणीय है। सिक्ख धर्म, बाइबिल, बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म सम्बन्धी लेख अच्छे ज्ञानवर्धक हैं। पर्यावरण पर भी कुछ ध्यान अवश्य दें।

—श्री नरेन्द्र कुमार जैन
देहरादून

जुलाई अंक में डा० ज्योति प्रसाद जैन का लेख 'समाज के सामने चुनौती' मैंने दो बार पढ़ा। इस अंक में आपने अन्य भारतीय धर्मों के साथ अभारतीय धर्मों का भी परिचय करवाया है। यह बात एकान्त मिथ्यात्व टालने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अंक अत्यन्त उद्‌बोधक है।

—श्रीमती वासंती शाह
संपादिका, **ज्ञानशलाका**, पुणे

मैंने **शोधादर्श** २६ का पठन गम्भीरता से किया तथा मैं अत्यन्त प्रभावित

हुआ कि आप अनुकरणीय सामग्री का प्रकाशन, मननशील व्यक्तियों के विचारों को संग्रहीत करके शोधादर्श के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

--श्री उत्तम चन्द्र जैन
राजाजीपुरम, लखनऊ

पूरा अंक २६ महत्वपूर्ण सामग्री से युक्त है। प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला जी की **समयसार** पर टिप्पणी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

—डा० ऋषभ चन्द्र जैन
वैशाली

२६वां अंक श्रुतपंचमी संगोष्ठी पर पठित शोधपरक पत्रों के प्रकाशन से विशेष महत्वपूर्ण हो गया है। एक ही स्थान पर विश्व के प्रमुख धर्मों के मूल ग्रंथों के बारे में समुचित ज्ञान प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त 'विचार बिन्दु' के अन्तर्गत 'भगवान महावीर की प्राकृत' पर डा० शशि कान्त जी के विचार स्तुत्य हैं। इसी सन्दर्भ में 'साहित्य सत्कार' में प्रो० खुशाल चन्द्र गोरावाला द्वारा कुन्दकुन्द भारती द्वारा प्रकाशित **समयसार** ग्रन्थ पर बहुत युक्ति-युक्त विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

—श्री आदित्य जैन
साकेत पल्ली, लखनऊ

आपने श्रुत-पंचमी के अवसर पर विश्व के विभिन्न धर्मों के मनीषियों की संगोष्ठी आयोजित कर उन-उन धर्मों के धर्मग्रन्थों के अवतरण (प्रथम लेखन) के सम्बन्ध में उदारतापूर्वक विचार-विमर्श एवं जानकारी प्राप्त की। इतना ही नहीं आपने सभी धर्मों के धर्मग्रन्थों के अवतरण सम्बन्धी आलेख प्राप्त कर उनका **शोधादर्श**-२६ में प्रकाशन भी किया। आपके इस उदारतापूर्वक अभिनव प्रयोग के लिये हार्दिक बधाई। अनेकान्त की चर्चा करते-करते जैन धर्मावलम्बी इतना अधिक एकान्ती हो गये हैं कि वे आपस में ही अपने-अपने दृष्टिकोणों की चर्चा एवं समन्वय करने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं।

--डा० राजेन्द्र कुमार बंसल
अमलाई (जि० शहडोल)

अलंकृत कलेवर, विविध शोधपूर्ण लेखों से परिपूर्ण, स्वनामानुकूल एवं विद्वत्पूर्ण सम्पादकीय टिप्पणी से भरी हुई यह पत्रिका **शोधादर्श** जैन जगत की

एक अमूल्य निधि है, शोधार्थियों का प्रेरणा स्रोत है और जिज्ञासुओं की विश्राम स्थली है ।

—डा० केशव प्रसाद गुप्त
चरवा, इलाहाबाद

पूरे शोध प्रेमियों के लिये यह आदर्श पत्रिका है ।

—श्री हजारीमल बांठिया
कानपुर

शोधादर्श ज्ञानवर्द्धक सामग्री से भरपूर रहता है ।

—श्रीमती राजदुलारी जैन
कानपुर

डा० ज्योति प्रसाद जैन का 'समाज के सामने चुनौती' लेख बहुत यथार्थ एवं प्रेरणाप्रद है । इसमें उभारे गये प्रश्न केवल जैन समाज के लिये ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिये विचारणीय हैं । इसी प्रकार 'समाचार विमर्श' एवं 'समाचार विविधा' भी बहुत ज्ञानवर्द्धक हैं ।

—डा० कृष्ण पाल त्रिपाठी
बलीपुर टाटा, प्रयाग

श्रुतपंचमी संगोष्ठी एवं उसके माध्यम से कुछ प्रमुख धर्मों की प्रारम्भिक जानकारी अति ज्ञानवर्धक है । मुनिचर्या के विषय में डा० ज्योति प्रसाद जी के विचार एवं आदरणीय आचार्य श्री पुष्पदंत के सुझाव जो कि प्राचीन ग्रन्थों-आगम में भी उपलब्ध हैं—इनका दृढ़ता से पालन मुनि आचार्यों एवं जैन समाज का दायित्व है—कर्त्तव्य है ।

—श्री गुलाब चन्द्र जैन
विदिशा

श्रुतपंचमी पर्व पर आयोजित संगोष्ठी में व्यक्त आलेखों को समाहित कर आपने अनेकान्त दृष्टि को व्यवहारिक रूप प्रदान करने का सराहनीय प्रयास किया है ।

—श्री वेद प्रकाश गर्ग
मुजफ्फरनगर

आनन्द की बात है कि अंक बहुत लाभप्रद रहा है । साहित्य समीक्षा उत्तम है । **शोधादर्श** की मैं राह देखता हूं और वाचन के लिये उत्सुक रहता हूं ।

—श्री एस० के० शहा
सांगली

स्वनामधन्य स्व० डा० ज्योति प्रसाद जैन जैसे मूर्धन्य विद्वान द्वारा संस्थापित एवं अनुप्रमाणित **शोधादर्श** के २६वें को आद्योपान्त अवलोकित कर अत्यन्त आनन्दित हुआ। वस्तुतः जैन धर्म, दर्शन एवं भारतीय प्राच्य विद्या के संरक्षण और सम्वर्द्धन में **शोधादर्श** का श्लाघनीय साहित्यिक सत्प्रयास रहा है।

—प्राचार्य डा० कैलाश नाथ द्विवेदी
कोंच

आपके द्वारा सुसम्पादित **शोधादर्श** पत्रिका को अवलोकित कर परम प्रसन्नता हुई। निस्सन्देह इस पत्रिका से महान जैन धर्म एवं दर्शन के श्रेष्ठ सिद्धांतों का संरक्षण एवं परिपोषण जनहित में होता है। इस पत्रिका का प्रत्येक अंक पठनीय, मननीय और संग्रहणीय है।

— डा० मीरा द्विवेदी
वनस्थली विद्यापीठ

शोधादर्श का पारायण एक नयी दृष्टि देता है।

—डा० नलिन कुमार शास्त्री
मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया

शोधादर्श का अंक पढ़ने में आया, मुझे पढ़ कर बहुत आनन्द आया।

—श्री मोहन लाल जैन छाजेड़
मनमाड (जि० नासिक)

"शोधादर्श" के २५वें अंक में "जैन धर्म बिकाऊ है" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ। इस लेख में जो विषय प्रस्तुत किया गया है वह चाहे जितना तथ्य परक और विचार करने योग्य हो किन्तु उसे प्रस्तुत करने की विधा तथा लेख की भाषा लेखक की रूग्ण मानसिकता की परिचायक है। जिस प्रकार व्यावसायिक संगठन अपनी वस्तु का प्रचार करने के लिये कामोत्तेजक व अश्लील चित्रों का उपयोग करते हैं उसी प्रकार लेख में सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने के लिये साधकों, विद्वानों एवं पंडितों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रति अपमानजनक बातें कही गई हैं। धार्मिक या सामाजिक कार्यक्रमों में यदि हमें कोई दोष नजर आता है तो उसे समाज के सामने सहज रूप में रखते हुए हम अपने सुझाव रखे तो उससे समाज को लाभ हो सकता है। इसी अंक में सम्पादक महोदय ने अपने सम्पादकीय में इसी विषय को काफी संयत भाषा में प्रस्तुत किया है तथापि उन्होंने असंयत भाषा में लिखे लेख को छापे जाने की अनुमति कैसे प्रदान की यह आश्चर्यजनक है।

अब रही विषयवस्तु की बात तो यदि पंच कल्याणकों या अन्य कार्यक्रमों में बोलियों की प्रथा से लेखक महोदय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि जैन धर्म बिकाऊ है तो उन्होंने धर्म के स्वरूप को ही नहीं समझा है। जैनधर्म का वास्तविक स्वरूप तो ऐसा है कि उसके बिकने का प्रश्न ही नहीं उठता। उसकी साधना के लिये धन की ही नहीं वरन् गम्भीर चिंतन, तप एवं त्याग की आवश्यकता है। जबकि अन्य धर्मों में जिस प्रकार धन का उपयोग होता है उसका कदाचित लेखक महोदय को ज्ञान नहीं है।

—श्री नरेश चन्द्र जैन
लखनऊ

(श्री नरेश चन्द्र जी के पत्र में उठाई गयी आपत्तियों का उत्तर देने के लिये हमने उनका पत्र "जैन धर्म बिकाऊ है" लेख के लेखक श्री कैलाश भूषण जिन्दल के पास भेज दिया था। श्री जिन्दल धर्म मर्मज्ञ हैं, प्रतिष्ठित साहित्यिक हैं तथा एक धर्म निष्ठ परिवार के सदस्य हैं (उनके घर में गत ७० वर्षों से जिन चैत्यालय स्थापित है), आयकर विभाग के एक सेवा-निवृत्त वरिष्ठ उच्च अधिकारी हैं, तथा श्री दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा की विदेश शाखा के उपाध्यक्ष हैं। श्री नरेश चन्द्र जी के पत्र पर हम श्री जिन्दल जी की प्रतिक्रिया नीचे दे रहे हैं। —सम्पादक)

शोधादर्श के अंक २५ के पृष्ठ २२ पर प्रकाशित मेरे लेख "जैन धर्म बिकाऊ है", की समीक्षा श्री नरेश चन्द्र जैन, अध्यक्ष, जैन मिलन, लखनऊ ने की है। मैं उनका आभारी हूं कि उन्होंने मेरे लेख को "तथ्य परक और विचार करने योग्य" समझा। परन्तु उनको मेरी "विधा तथा लेख की भाषा" से आपत्ति है।

जब मुनि श्री सरल सागर जी महाराज स्वयं लिखते हैं कि "स्वार्थी अर्थ लोलुप आयोजकों ने विशुद्ध धार्मिक उत्सवों को व्यापार का साधन बना लिया है" तो मेरे लेख का शीर्षक "जैन धर्म बिकाऊ है", से नरेश चन्द्र जी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। व्यंग साहित्य की एक विधा है। एक गम्भीर विषय को पाठक के लिए रोचक बनाने के लिए इस विधा का प्रयोग किया जाता है। नरेश चन्द्र जी को मुझे "जैन धर्म का वास्तविक स्वरूप" बताने की कोई आवश्यकता नहीं है। कौन नहीं जानता कि "धर्म की साधना के लिए धन की नहीं, वरन् चिंतन, तप एवं त्याग की आवश्यकता है"। खेद तो इस बात का है कि यह सब जानते हुए भी नरेश चन्द्र जी धर्म की विकृतियों पर पर्दा डालना चाहते हैं।

शोधादर्श मनीषियों, चिन्तकों और सुधी जनों की चातुर्मासिक पत्रिका है। इसके संस्थापक एवं आद्य सम्पापक स्वनामधन्य डॉ० ज्योति प्रसाद जैन थे। सम्पादक-मण्डल ने **शोधादर्श** में मेरा लेख छापा, तो कुछ सोच कर ही छापा होगा। यदि उसकी भाषा असंयत, अश्लील या अभद्र होती तो वह इस लेख को कदापि प्रकाशित न करते।

अन्त में, नरेश चन्द्र जी अपनी रुग्ण मानसिकता का परिचय देते हुए, कहते हैं—"जिस प्रकार व्यवसायिक संगठन कामोत्तेजक व अश्लील चित्रों का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार लेख में सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने की चेष्टा की गई है।" नरेश चन्द्र जी को विदित हो कि मेरे पिता जी (स्व० पं० अजित प्रसाद) ने जैन-धर्म और जैन-जाति की जितनी सेवा की है, उससे जैन समाज कभी उऋण नहीं हो सकता। चिन्तन और मनन मुझे अपने पूज्य पिता से विरासत में मिला है। मैं अब ८० वर्ष का हो गया हूं। इस दीर्घ कालीन जीवन-यात्रा में एक दर्जन पुस्तकें लिख चुका हूं, जिनमें दो जैन-धर्म पर हैं। विविध विषयों पर १०० से ऊपर लेख भारत एवं भारतेतर पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं। मैं "सस्ती लोकप्रियता" से ऊपर उठ चुका हूं।

"मैं रहूं आप में आप लीन, सो करहु होऊँ जो निजाधीन"।

—श्री कैलाश भूषण जिन्दल
अजिताश्रम, लखनऊ

★★